(1)

भूमंडलीकरण की अवधारणा और प्रभाव : संदर्भ सामाजिक क्षितिज

- राम आह्लाद चौधरी

भूमंडलीकरण की अवधारणा और प्रभाव की समझदारी का सीधा अर्थ वर्तमान की जानकारी है। वर्तमान में इस वर्ग विभाजित समाज की स्थिति क्या है? इसको जाने बिना भूमंडलीकरण की व्याख्या असंभव है। इसके प्रति कई तरह की अवधारणाएँ निकल पड़ी हैं, जिनमें कहीं कोई मेल नहीं है। विभिन्न आर्थिक सिद्धांतों के बीच सामंजस्य बैठना या किसी खास किस्म की आर्थिक नीति को लागू करने का मकसद ही भूमंडलीकरण है। यह भी कहा जा सकता है कि वर्चस्ववादी सिद्धांत को शुरू से लेकर अंत तक थोपना इसका मूल लक्ष्य है। समाज के ऊपरी हिस्सों को सुख-सुविधा देने के अलावा इसके पास और किसी तरह की ताकत नहीं। इस तरह की अवधारणाओं पर विमर्श करने से पता चलता है कि भूमंडलीकरण का एजेंडा साम्राज्यवादी ताकतों का एजेंडा है, जो ताकतें अपनी आर्थिक संस्थाओं के माध्यम से पूरी दुनिया को अपनी गिरफ्त में धीरे-धीरे लेती हैं।

दुनिया के विभिन्न देशों में उनका यही लक्ष्य होता है कि किसी तरह उस देश की अर्थ व्यवस्था पर कब्जा किया जाय, इसके लिए मुख्य रूप से आर्थिक-सामरिक-राजनीतिक तौर पर भूमंडलीकरण के हमले होते हैं। यदि बाजार पर कब्जा करना असंभव दिखता है, तो राजनीतिक तौर पर कब्जा करने की तैयारी की जाती है और जब यह देखा जाता है कि आर्थिक और राजनीतिक तौर पर उन्हें कामयाबी नहीं मिलती है, तब सामरिक तौर पर हमले किये जाते हैं। पूरे विश्व में हजारों सैन्य अड्डे बनाये गये हैं। सैन्य अड्डों को स्थापित करने के पीछे जंगखोरों की मंशा स्पष्ट है। उनकी मंशा समझने के बावजूद यदि यह कहने का प्रयास किया जाय कि भूमंडलीकरण के चलते विकास हो रहा है, तो ऐसी सोच पर तरस खाना अस्वाभाविक नहीं है।

Scanned with CamScanner

विगत दो दशकों से यह एजेंडा चल रहा है। इसके प्रवक्ता चाहे समृद्धि की जितनी बातें करें, सच्चाई यही है कि सामाजिक कल्याण के सारे कार्य ठप हो चुके हैं। इस एजेंडे के चलते गाँव उजड़ते जा रहे हैं, किसान दम तोड़ रहे हैं, कृषि क्षेत्र का संकट घनीभूत हो गया; जिसका प्रभाव औद्योगिक क्षेत्रों पर पड़ने लगा है। रोजगार के अवसर बंद हो चुके हैं। प्रतिरोध की क्षमता कम हो गयी है। प्रतिवाद के स्वर को दबाने का विश्वव्यापी अभियान चल पड़ा है, हालांकि छोटे-छोटे पर प्रतिवाद और आंदोलन हो रहे हैं। उन आंदोलनों के बीच समन्वय स्थापित करने के साथ-साथ वृहत्तर आंदोलन करने की आवश्यकता है।

साहित्य में इन सबकी झलक दिखती है। साहित्य की विविध विधाओं पर गहराई से नजर डालने से यह पता चलता है कि संघर्ष की वाणी को दूसरे ढंग से प्रस्तुत करने का प्रचलन आरंभ हो चुका है। यह जो प्रचलन चला है, उसके चलते ही किसानों की समस्याओं से सम्बन्धित प्रतिरोधात्मक आवाज सामने कम आ रही है, जबकि आसमानी विकास की चर्चा ज्यादा होती है। विगत 10 सालों में अपने देश में 4 लाख से ज्यादा किसानों ने आत्महत्या की है। यदि किसी समाज में इतनी बड़ी संख्या में लोग आत्महत्या करें, इसके बावजूद यदि कोई यह कहे कि समाज आगे बढ़ रहा है, तो आश्चर्य होता है। संगठित मजदूरों की संख्या घट रही है और असंगठित क्षेत्रों में मजदूरों से ठेके पर काम लिया जा रहा है। सही मायने में इस चमचमाते दौर में कॉरपोरेट वित्तीय पूंजी का वर्चस्व बढ़ा है, क्योंकि इस पूंजी की सांठगांठ भूमंडलीकृत पूंजी से हुई। इस पूंजी ने अपना पैर जमाने के लिए मीडिया पर अपना शिकंजा कसा है। प्रचार के जरिये इसने विकल्पहीन राजनीति को जन्म दिया है। समाज को इस पूंजी ने यह समझने की कोशिश की है कि भ्रष्टाचार के चलते विकास अवरुद्ध हो गया है, दरअसल भ्रष्टाचार का मुख्य स्रोत वैश्वीकरण है।

तीसरी दुनिया के देशों के लोग भ्रष्टाचार का विरोध करते हुए वैश्वीकरण विरोधी माहौल बनाने की कोशिश करते नजर आ रहे हैं। उन्हें यह समझ में आ रहा है कि जब किसी देश में गरीबों-मेहनतकशों के लिए अनुदान देने की व्यवस्था नहीं की जायेगी, तब तक देश का समुचित विकास नहीं हो पायेगा। भूमंडलीकरण ने सामाजिक-आर्थिक स्तर पर विषमता को बढ़ावा दिया है। इस बढ़ावे के चलते एक ही देश में दो देश बन गये हैं; एक देश के हिस्से में गरीब रहते हैं और दूसरे हिस्से में अमीर रहते हैं। अमीर बनने वालों को अंगुली पर गिना जाता है, जबकि नये सिरे से गरीब बनने वालों की संख्या कॉपी-डायरी में लिखना भी असंभव होता जा रहा

है। गरीबी तेजी से बढ़ रही है इसके चलते महिलाओं की असुरक्षा बढ़ गयी है। भूमंडलीकरण के इस युग में महिलाओं पर सबसे अधिक हमले आरंभ हुए हैं। दूसरी तरफ सौंदेबाजी का युग शुरू हुआ है। साहित्यकार-रचनाकार भी इस तरह की राजनीति के शिकार हो चुके हैं। जब सामाजिक-आर्थिक विषमता चरम पर पहुँचेगी, तो बर्बरता का युग शुरू होगा। बर्बरता के इस युग को देखकर गाया नहीं जा सकता है।

भूमंडलीकरण के प्रभाव के चलते समाज के रंध्र-रंध्र में भ्रष्टाचार व्याप्त हो चुका है। इस भ्रष्टाचार के विरुद्ध में जो आवाज उठा रहे हैं, वे सीधे-सीधे वित्तीय पूंजी की दुहाई देते हैं। यही कारण है कि वे भ्रष्टाचार के विरोधी होते हुए भी भ्रष्टाचार को बढ़ाने वाले उपादानों को समाज में बढ़ावा देते हैं। इससे भूमंडलीकरण का एजेंडा और तेजी से समाज में लागू हो रहा है। समाज की विषमता को खत्म किये बिना साहित्य के सिद्धांतों को मानव-हित में लगाना असंभव है। यदि साहित्य सिद्धांत की सही व्याख्या नहीं की जायेगी, तो सामाजिक न्याय पर खतरे मंडराने लगेंगे। सही मायने में जनतंत्र के चारों खम्भे कमजोर होते हैं। जो प्रक्रिया जनतांत्रिक व्यवस्था के चारों खंभों को कमजोर करती है, उसे मानव विरोधी ही कहना चाहिए।

सही अर्थों में भूमंडलीकरण की प्रक्रिया के चलते विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका और पत्रकारिता कमजोर हुई है, इस तरफ साहित्यकारों-दार्शनिकों-चिंतकों ने समाज का ध्यान आकर्षित किया है। समाज ने व्यापक स्तर पर यह महसूस किया कि इंसाफ की लड़ाई को अंजाम देना होगा, जब तक इंसाफ के लिए नहीं लड़ा जाता है, जब तक विकल्प को स्थापित नहीं किया जाता है, तब तक किसानों को मौत से नहीं बचाया जा सकता है मजदूरों के घरों में 'एक और हथौड़े वाले' की छठी नहीं मनायी जा सकती है, मां-बहनों को सम्मान नहीं दिया जा सकता है, नौजवानों को रोजगार मुहैय्या करना असंभव है, बुजुर्गों को स्वस्थ रखना कठिन है। सही मायने में असंतोष को बढ़ना और सम्प्रीति को खत्म करना ही इस भूमंडलीकरण की प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति के विरुद्ध संघर्षशील-धर्मनिरपेक्षों, जनतंत्र पसंदों-राष्ट्रप्रेमियों की लामबंदी की मजबूती ही सामाजिक-आर्थिक विकास की गारंटी है। यही गारंटी इस युग की बर्बरता को खत्म करने का शंखनाद है।

संघर्ष की राह पर चलते-चलते अनुभव प्राप्त करना और उन अनुभवों को पाथेय बनाना अपने-आप में एक दृष्टांत होता है। यही दृष्टांत बर्बरता को खत्म करता है और इसके दबने या खत्म होने से विश्व स्तर पर संतुलन-शक्ति में तब्दीली

Scanned with CamScanner

होती है। इस तब्दीली को समाजवाद के पक्ष में लाने का संघर्ष जारी है। यही संघर्ष विकल्प प्रस्तुत करता है। इस विकल्प में इतनी ताकत होती है, जो जनता को न केवल राहत देती है बल्कि उसे अपना अधिकार देती है और यह अधिकार पाकर जनता अपने संघर्ष-पथ पर अपने अनुभवात्मक पाथेय को लेकर अपनी जय-यात्रा शुरू करती है।

बर्बरता का युग चल रहा है। चारों तरफ हाहाकार मचा हुआ है। वैश्विक स्तर पर विकास अवरुद्ध है। इसके बावजूद झूठे आँकड़े देकर यह बताने की कोशिश की जा रही है कि सब कुछ 'ठीक-ठाक' है। इस ठीक-ठाक का मतलब क्या है, किसी को पता नहीं चल रहा है। खाये-पिये-अघाये लोगों की खुशहाली को अब खुशहाली का यथार्थ कहने की कोशिश की जा रही है। गरीबों का परिश्रम मिट्टी में मिल रहा है, उनकी गाढ़ी कमायी को हड़पने के लिए तरह-तरह के नियम-कानून बनाये जा रहे हैं। इन नियम-कानूनों को बनाने वाले खुले तौर पर पूंजी के पक्ष में खेल रहे हैं। पूंजी के पक्ष में घिनौने खेल जारी हैं। इस खेल के चलते समस्याएँ खड़ी हैं। धीरे-धीरे समस्याएँ पहाड़ बनती जा रही हैं। पहाड़ एक ऐसा पहाड़ है, जो जल्दी समतल बनने वाला नहीं है। यह अवरोधक के रूप में सामने है। इसका आकार-प्रकार दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है। इस पर जहाँ चोट करने की जरूरत है, वहां इसकी रक्षा करने के सारे साधन मौजूद हैं। इसके चलते बर्बरता बढ़ती जा रही है। ऐसी स्थिति में जनतंत्र पर कुठाराघात होना स्वाभाविक है। इस कुठाराघात के लिए वही जिम्मेदार है, जो इस संसार को चलाने का दावा करता है।

सही अर्थों में इस संसार को चलाने वाला ही बर्बाद करने के लिए व्याकुल है। गलत आर्थिक नीतियों के चलते इस संसार की सुन्दरता गायब होती जा रही है। इसको बचाने वाला कोई नजर नहीं आ रहा है। शासक वर्ग के सामने करने के लिए कुछ नहीं है। इसलिए उसने ठान लिया है कि इसे बर्बाद करना उचित है। यदि ऐसा नहीं है, तो वह दिखायी पड़ता कि अमुक काल खंड में शासक वर्ग अपनी गलतियों की समीक्षा करता है। क्या शासक वर्ग अपनी गलतियों की समीक्षा करता है, क्या कभी वह अपनी गलतियों को दुरुस्त करने का निर्णय लेता है। शासक वर्ग जो निर्णय लेता है वही करता है। उसके द्वारा निर्णय लेने के चलते जो गलतियाँ होती हैं, उन गलतियों को वह मानवीय रूप नहीं देना चाहता है। उसके निर्णय लेने से मानव-समाज को हानि ही हानि पहुँचती है। इस नुकसान के चलते समाज में गरीबी बढ़ने लगती है और इसके चलते कई तरह की बीमारियाँ जन्म लेने लगती हैं। समाज में

Scanned with CamScanner

जब गरीबी बढ़ने लगती है और इसके चलते कई तरह की बीमारियाँ जन्म लेने लगती है। समाज में जब गरीबी चरम पर पहुँच जाती है, तब प्रतिवाद करने की क्षमता को कम करने के लिए चारों तरफ से शासक वर्ग टूट पड़ता है। उसका मकसद यही होता है कि प्रतिवाद के स्वर को किसी तरह दबाया जा सके। प्रतिवाद का स्वर शासक वर्ग दबाने का अभियान आरंभ करता है, तब उसकी तरफ से मेहनतकशों पर बेपरवाह हमले होते हैं।

एक तरफ नियम-कानून बनाकर अधिकार मांगने वालों पर आक्रमण होता है, तो दूसरी तरफ खुली लूट की जाती है। यह लूट देश की सम्पदाओं की लूट होती है। इस लूट देश की सम्पदाओं की लूट होती है। इस लूट के बल पर शासक वर्ग का घिनौना खेल चलता है इसके चलते समाज में घृणा चरम पर पहुँच जाती है। इस घृणित माहौल में खुद को बचाने की शिक्षा शासक वर्ग देने का प्रयास करता है। उससे समाज को सुलाने का काम आसान हो जाता है। क्या समाज को जगाने की आवश्यकता है या उसे सुलाने की? इस सवाल पर जब शासक वर्ग अपना मुंह खोलता है, तब वह यही कहता है कि समाज सुषुप्ता अवस्था में है। उसे जगाने की कोई जरूरत नहीं है। क्या कोई चोर चाहेगा कि जिस घर में वह चोरी करने गया है, उस घर के मालिक जाग जाएँ। एक चोर को जैसे किसी पत्ते के खड़खड़ाने से डर लगता है, वैसे शासक वर्ग को गरीबों के खांसने से भी भय होता है। शासक की दीवारें भय पर खड़ी होती हैं। वे दीवारें कब तक गिर जाएं कहना मुश्किल है। उन दीवारों को गिरते कई बार देखा गया है।

समाज व्यवस्था पर जिन लोगों का वर्चस्व है, उस वर्चस्व को मजबूत करने का काम विगत 17-18 सालों में काफी जोर-शोर के साथ हुआ है। दरअसल उन वर्चस्ववादियों का एक ही एजेंडा रहा है कि किसी तरह उनकी वर्चस्वता बनी रहे। अपनी वर्चस्वता को कायम करने के लिए जितने तरह के हथकंडे होते हैं, उन सभी हथकंडों को वर्चस्ववादी अपनाते हैं। इसलिए वे पूरे विश्व को अपनी मुट्ठी में लेने की कोशिश में लगे रहते हैं। जब से यह दुनिया एक ध्रुवीय बना है, तब से उन वर्चस्ववादियों की मनमानी बढ़ गयी है। बाजार में दखल करना इन वर्चस्ववादियों का एक मकसद है। बाजार पर हावी होने से वर्चस्ववादी मालामाल हो जाते हैं।

बाजार पर कब्जा करना वर्चस्ववादी का जिस तरह एक मकसद है, ठीक उसी तरह उस बाजार को संचालित करने के लिए जो राजनीति शक्तियाँ काम करती हैं, उन शक्तियों को प्रभावित करने में वर्चस्ववादी जुट जाते हैं। इसके साथ-साथ

Scanned with CamScanner

प्रचार के लिए मीडिया को काम में लगाते हैं। वैसे समाजशास्त्र के लोग कहते हैं कि इस डिजिटल युग में वर्चस्ववादी पूरे विश्व पर आर्थिक-सामाजिक-राजनीतिक तरीके से आक्रमण करते हैं। कुछ समाजशास्त्रियों ने यह भी बताया कि वर्चस्ववादी आर्थिक-सामरिक-राजनीतिक तौर पर अपना कब्जा जमाता है। जब किसी देश के इन तीन क्षेत्रों में वर्चस्ववादी घुसने के लिए अपना रास्ता चौड़ा करते हैं, तब वे सबसे पहले उस देश की राजनीति को प्रभावित करते हैं। धीरे-धीरे उस देश की राजनीति का लुम्पानाइजेशन आरंभ होता है।

विधायिका में ऐसे-ऐसे जन प्रतिनिधियों को पहुँचाया जाता है, जिन्हें राजनीति से कोई मतलब नहीं होता है। उन जन प्रतिनिधियों में त्याग की भावना तक नहीं होती है। वह खाने-पीने में विश्वास रखते हैं। एक मायने में उपभोक्तावादी संस्कृति को बढ़ावा देना उन वर्चस्ववादियों का काम होता है। इसके चलते समाज में विषमता बढ़ती है। इस बढ़ती विषमता के कारण समाज में हाहाकार मचता है। जनता त्राहि-त्राहि करती हैं ऐसी स्थिति में साहित्यकारों को जहाँ संघर्ष की भूमिका को व्याख्यायित करने के लिए सामने आना चाहिए, वहाँ साहित्यकारों को यह बताया जाता है कि फरमान को मानकर चले। आखिर यह फरमान कहाँ से आता है? पूंजीवादी शिविर से आता है। पूंजीवादी शिविर के फरमान को चिकनी-चुपड़ी लब्जों में सजाना उचित नहीं है, यह साहित्यकारों की भूमिका नहीं होती है। लेकिन पूंजीवादी शिविर की स्तुति करने वाले साहित्यकारों को पुरस्कारों से लाद दिया जाता है। ऐसे साहित्यकारों को महज उपदेशक बना दिया जाता है।

साहित्यकार न प्रवचनकर्ता होता है और न उपदेशक यदि साहित्य में वर्ग-संघर्ष को बढ़ाने की क्षमता नहीं होती है, तो वह साहित्य प्रणय-गीत में तब्दील हो जाता है और उस साहित्यकार की भूमिका को इतिहास एक 'प्रणयकार' के रूप में प्रस्तुत करता है। इसके चलते ऐसे साहित्यकारों का भविष्य अधर में लटका नजर आता है, जिसका आभास ऐसे साहित्यकारों को हो जाता है। अपने भविष्य से डर कर ऐसे साहित्यकारों को अपना रूप-रंग बदलना पड़ता है, वे अपना नामकरण करने के लिए बाध्य दिखते हैं। इस सिलसिले में परिवर्तनपंथियों के संबंध में जानकारी रखना तथा उन परिवर्तनपंथियों के अवदानों का सम्यक् विश्लेषण करना आवश्यक हो जाता है। क्या परिवर्तनपंथी सही अर्थों में साहित्य के उपासक हैं या सत्ता के? सत्ता का उपासक किसी कीमत पर साहित्यकार नहीं हो सकता है? ऐसे उपासकों को 'मोक्ष' भी नहीं मिलता है। सत्ता के गलियारे में भटकने से संघर्ष की

Scanned with CamScanner

देवी नहीं मिलती है। और जिसने अपने रचना-कर्म के केंद्र में टका-संस्कृति को केंद्र-बिन्दु बना लिया है, उसका रचनाकर्म इस संसार में ऊब-डूब खाते नजर आता है।

वैश्वीकरण की हवा ने साहित्यकार को परिवर्तनपंथी की भूमिका में ही लाकर खड़ा ही नहीं किया है बल्कि उन्हें रचनाधर्मिता से अलग-अलग कर दिया है। यही कारण है कि उन परिवर्तनपंथी शक्तियों का जमावड़ा शासक वर्ग की तरफ होता है और उनका सीधा सम्बन्ध साम्राज्यवादी देशों के महाप्रभुओं से होता है। उन महाप्रभुओं के भयानक-भयानक कारनामों पर उन परिवर्तनपंथियों के मुँह नहीं खुलते हैं, पर प्रतिवाद-प्रतिरोध की जो बातें करते हैं, उनके विरुद्ध वे परिवर्तनपंथी टीन की तलवार लेकर भागते नजर आते हैं। क्या उन परिवर्तनपंथियों के मुँह में गरीबों-मेहनतकशों के पक्ष में एक शब्द भी निकलते हैं। वैश्वीकरण के जमाने में साहित्यकारों के एक व्यापक हिस्से को इस रूप में देखा जाता है, लेकिन इसका मतलब कदापि यह नहीं है कि सभी साहित्यकार वैश्वीकरण की हवा में उड़ चुके हैं।

जिन देशों के साहित्यकारों ने पुरस्कार या जीत या खुशी से उठकर अपनी रचनाधर्मिता को आगे बढ़ाया है, उन देशों के नागरिकों ने वहाँ वैश्वीकरण की हवा को नियंत्रित किया है। इस संदर्भ में लैटिन अमेरिका के देशों के नाम लिये जा सकते हैं। लेकिन दुनिया के अधिकतर देशों के साहित्यकारों ने वैश्वीकरण के मुद्दों पर समझौते का रास्ता अख्तियार किया है। इसके चलते प्रतिवाद के स्वर निश्चित तौर पर दब गए, लेकिन याद रखने की जरूरत है कि वे स्वर खत्म नहीं हुए हैं।

दुनिया की संतुलन-शक्ति निश्चित तौर पर साम्राज्यवादी शिविर की ओर झुकी है। इस संतुलन को कायम रखने में दक्षिणपंथी-प्रतिक्रियावादी ताकतें लगी हुई हैं। समाजशास्त्रियों का यही कहना है। समाज में उठते आंदोलन को आगे बढ़ाने के लिए साहित्यकारों को एक महती भूमिका अदा करनी पड़ती है। इस भूमिका के निर्वाह करने से साहित्यकारों के हस्तक्षेप साहित्य और समाज में दर्ज होते हैं। समय भी इसतरह के हस्तक्षेपों का मूल्यांकन करते हुए इतिहास में उच्च कोटि का स्थान उन साहित्यकारों को देता है। इससे वैचारिक संघर्ष को रास्ता मिलता है। विगत दो दशकों से इस रास्ते को जाम कर दिया गया है। वर्चस्ववादियों ने दक्षिणपंथी-प्रतिक्रियावादियों को इकट्ठा किया है। उन ताकतों को नववैश्वीकरण ने फूलने-फलने का मौका दिया है। जो ताकत बिल्ली दिखती थी; अब वह हाथी बन गयी है। लेकिन उसकी प्रवृत्ति बिल्ली की है। यदि हाथी की प्रवृत्ति बिल्ली जैसी दिखने लगे, तो यही समझना चाहिए कि प्रवृत्तियों का खेल ही कितना गहरा और कितना

Scanned with CamScanner

भयानक बन गया है। प्रतिक्रियावादियों ने साम्राज्यवादियों के एजेंडों को लागू किया है। इसके लिए किसी भी तरह की कमी वे नहीं बरतते हैं। पर क्या यही स्थिति देश-दुनिया की रहेगी या उसमें कुछ परिवर्तन भी होगा? परिवर्तन की लड़ाई विगत दो दशकों में काफी तेज हुई है। आने वाले समय में यही लड़ाई और तेज होगी।

देशवासी यानि जिन्हें अपने देश से मुहब्बत है, वे चाहे दुनिया के किसी हिस्से में क्यों न हों, अपने देश की सम्पदाओं की लूट को रोकने के लिए निश्चित तौर पर आगे बढ़ेंगे। यह लड़ाई तभी जाकर मजबूत होगी, जब जनतंत्र को मजबूत करने के साथ-साथ उसे प्रसारित करने पर जोर दिया जायेगा। इसलिए कि वैश्वीकरण का एजेंडा यह भी है कि किसी तरह जनतांत्रिक अधिकारों का हनन किया जाय। जनतांत्रिक अधिकारों के हनन के चलते प्रतिरोध कम हो जाता है। यदि कोई यह कहे कि इस वैश्वीकरण ने प्रतिरोध को तेज करने के लिए प्रौद्योगिकी विकास को स्थापित किया है। इस विकास के चलते लोग आपस में बातचीत करते हैं। अपने सुख-दु:ख की समरसता पर बल देते हैं। सोशल मीडिया के चलते लोगों की भीड़ उमड़ती है। इस भीड़ को प्रतिवाद के रूप में देखना उचित है या नहीं- यह भी सवाल उठता है। कहने का अभिप्राय यह है कि यदि शासक वर्ग के विरुद्ध बड़े पैमाने पर नाराजगी उभरती है, तो अच्छी बात है। इस अच्छाई को दबाने के लिए शासक वर्ग कोई रास्ता अपनाता है और उसके चलते प्रतिवाद का रूप बदल जाता है, तो उस रूप को बदलना जरूरी होता है। इससे चीज की जानकारी दर्शन के बिना असंभव है। इसके लिए दर्शन की स्पष्ट समझदारी के साथ-साथ राजनीतिक संगठन की जरूरत पड़ती है।

दर्शन की स्पष्ट समझदारी के बिना खेत में काम करने वाली महिला-मजदूरों की सुन्दरता का आभास नहीं होता है, जिसका आभास प्रेमचंद ने किया था। प्रगतिशील लेखक संघ का पहला अध्यक्षीय भाषण विश्व में अकेला भाषण है, जिसने साहित्यिक-सौन्दर्य की कसौटी को बदल दिया। प्रेमचंद का यह भाषण विश्व में ही प्रसिद्ध नहीं हुआ बल्कि इसकी अन्तर्राष्ट्रीयता ने संघर्ष को एक नया रूप दिया है। उस रूप के चलते प्रतिवाद का स्वर चारों तरफ गूंजा है। उस गूंज के चलते बर्बरता कम हुई। असभ्यता और बर्बरता को कम करने की पहल साहित्यकार ही कर सकते हैं, जो संघर्षशील की आवाज को बुलंद करते हैं। यही बुलंदी बर्बरता को खत्म करने की घोषणा है। यह घोषणा अचानक नहीं होती है। इस उद्घोष को दबाने के लिए विश्वव्यापी हमले होते हैं पर जनता के उद्घोष को दबाने की क्षमता

Scanned with CamScanner

शासक वर्ग और उसके पिछलग्गुओं में नहीं होती है। संघर्ष की राह पर अनुभवात्मक पाथेय के साथ समाज में जनता की शक्ति यात्रा जारी रहती है, जिसे जनता की अजेय यात्रा कहना अनुचित नहीं है। यह जय-यात्रा में व्याप्त हो रही बर्बरता को खत्म करने की गारंटी है, क्योंकि जनता ही इतिहास रचती है।

जनवाद के सामने कठिन और जटिल चुनौतियाँ हैं। जनवाद ने समाज में जनता को बोलने का अधिकार दिया। मेहनतकशों ने अपने लंबे संघर्षों के जरिये अपना अधिकार सुनिश्चित किया है। अधिकार सुनिश्चित होने से उन्हें अपने दैनंदिन के कार्यों में एक तरह से सहूलियत प्राप्त हुई। उनके जीवनस्तर में बदलाव आया। इस बदलाव ने समाज में व्याप्त अंधेरे को दूर किया। जनवाद के चलते लोगों ने महसूस किया कि उन्हें जीने का अधिकार प्राप्त किया है। इसका प्रचार-प्रसार अचानक नहीं हुआ। लंबे संघर्षों ने इसकी बुनियाद को मजबूत किया। असंख्य शहादत देने के बाद जनवाद की स्थापना हुई। इतिहास के पन्नों पर जनवाद की अग्रगति की गाथा सुरक्षित है। इसके तात्पर्य को वर्तमान में स्थापित करना तथा इसके विस्तार को व्यापकता देना युगीन मांग है। लेकिन इस मांग को कुचलने के लिए चारों तरफ से हमले पर हमले होते हैं। इस तरह के हमले कभी सुनिश्चित तरीके से होते हैं तो कभी अचानक ढंग से। हमलों के बीच जनवाद लगातार आक्रांत हो रहा है। इसे बचाने के लिए जो पहल होना चाहिए, वैसी पहले नहीं दिख रही है; शायद जावेद अख़्तर के शब्दों में यह कहना अनुचित नहीं होगा।

वो ढल राह है तो ये भी रंगत बदल रही है
जमीन सूरज की उँगलियों से फिसल रही है

वर्तमान समय में गैर राजनीतिकरण का बोलबाला है। समाज में ऐसी राजनीति चल रही है, जो दर्शनविहीन है। जब राजनीति को दर्शन से अलग किया जाता है, तब राजनीति का चेहरा अमानवीय हो उठता है। इसकी छवि महिमाहीन और गरिमाविहीन बन जाती है। ऐसी स्थिति में समाज का विकास पूरी तरह अवरुद्ध हो जाता है। न्याय-अन्याय का भेद उठ जाता है। प्रतिवाद पूरी तरह खत्म हो जाता है। सही और गलत का भेद दूर कर दिया जाता है। ऐसा महसूस होता है कि अपराध ही समाज की अंतिम बात है। इसके जरिये अमरत्व प्राप्त हो सकता है। बड़े पैमाने पर अपराधियों की तादाद सामने आती है। कभी-कभी यह देखा जाता है कि अपराधियों के आदेश पर विधायिका चलने लगती है। ऐसी स्थिति में विद्वान कहते हैं कि राजनीति का अपराधीकरण होने लगा है। कभी-कभी यह भी देखने को

Scanned with CamScanner

मिलता है कि अपराध का राजनीतिकरण होने लगा है। बार-बार यह साबित हुआ है कि नौकरशाहों, बड़े व्यवसायियों और राजनेताओं के बीच हुए गठजोड़ ने समाज की स्वाभाविक गति को तहस-नहस किया है।

वर्तमान समय में शासक दल और अपराधियों के बीच सांठगांठ हुई है। इस सांठगांठ ने समाज के समक्ष चुनौती पैदा की है। चारों तरफ अपराध बढ़ने लगा है। अपराध के बढ़ने के चलते सुरक्षा प्राय: समाप्त हो गयी है। महिलाओं को सुरक्षा नहीं देना आज सबसे बड़ी समस्या है। महिलाओं के विरुद्ध चारों तरफ एक तरह से षडयंत्र चल रहा है। इस षडयंत्र को किस तरह रोका जाय यह एक बड़ा सवाल है। शासक दल महिलाओं को सुरक्षा प्रदान करने में पूरी तरह विफल है। महिलाओं पर अत्याचार-अन्याय करने वालों को पुलिस-प्रशासन का पूरा संरक्षण प्राप्त है। पूरे देश में महिलाओं पर भयावह हमले हो रहे हैं, उन हमलों से महिलाओं को बचाने का कोई रास्ता नहीं दिखता है। ऐसा लगता है कि राज्य प्रायोजित महिला-उत्पीड़न चल रहा है। इसी तरह राज्य प्रायोजित भ्रष्टाचार चरम पर है।

भ्रष्टाचार ने जनतंत्र के समक्ष गड्ढा खोदने का काम किया है। उदारीकरण सरकार की मजबूरी हो गया है। इसलिए कि देसी सरकार विदेशी इशारे के बिना नहीं चल सकती है। इस उदारीकरण ने देशी-विदेशी कॉरपोरेट हाउसेस को लूटने की पूरी छूट दे दी है। भ्रष्टाचार के चलते लूट की संस्कृति पर चल पड़ी है। भ्रष्टाचार की बहती गंगा में हर कोई हाथ धोना चाहता है। इसके चलते समाज में एक बड़ा सवाल उठ खड़ा हुआ है कि क्या जनतंत्र भ्रष्टाचार मुक्त समाज स्थापित नहीं कर सकता है। इस प्रश्न पर शासक दल को मुखर होना चाहिए था, लेकिन वर्तमान दौर में शासकदल में भ्रष्टाचार से समझौता कर लिया है। इस समझौते के चलते समस्याएं उत्पन्न हुई हैं। समाधान खोजने के मैदान में सिर्फ जनतंत्र पसंद और राष्ट्रप्रेमी दिखते हैं।

जनतंत्र पसंद लोगों और राष्ट्रप्रेमियों को हाशिये पर ठेलने की मुहिम चल रही है। इसकी गति भी तेज है। किसी तरह सत्ता में घुसना और असंवैधानिक तरीके से सरकार को चलाना शायद युगीन सच्चाई बन गयी है। इसके विरुद्ध मुँह खोलने वालों को जेल में ठूंस दिया जाता है। जनतंत्र पसंद लोगों को बोलने नहीं दिया जाता है।

अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य पर हमला बढ़ा दिया गया है। शासक वर्ग ने मीडिया के व्यापक हिस्सों के जरिये समाज में अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य पर एक तरह से इम्बारगो लगा दिया है। राष्ट्रप्रेमियों के कार्यों को हास्यास्पद बनाने के लिए शासक

Scanned with CamScanner

वर्ग की कुचेष्टा चल रही है। इतिहास के गौरवशाली संघर्षों और स्थापनाओं को धूमिल करने के लिए तरह-तरह से एक के बाद एक साजिश की जा रही है। इतिहास को झुठलाने की प्रक्रिया वर्तमान समय में जिस तरह तेज हुई है उससे जनतंत्र के समक्ष भयावह स्थिति पैदा हुई। विशेषकर संघर्षशील परंपरा को झुठलाने की प्रवृत्ति बढ़ी है। इस प्रवृत्ति ने बढ़ते अन्याय-अत्याचार के विरुद्ध उठते प्रतिवाद को निष्क्रिय बनाने की कुचेष्टा की है। इससे एक भयानक रोग सामने आया है। सामने शत्रु है, फिर भी उसे पहचानने की क्षमता गायब हो गयी। आजादी के एक-दो दशक के बाद जहाँ जोर-जुल्म के विरुद्ध स्वत: स्फूर्त आंदोलन खड़ा होता था, आज वहीं आंदोलन के बदले एक तरह से चुप्पी दिखने लगती है। जिन मुद्दों पर पूरे समाज को लामबंद होकर उतरना चाहिए, उन मुद्दों को मीडिया हथिया लेती है। इससे शासक वर्ग का दमन बच जाता है।

वर्तमान दौर में मीडिया ने जिस तरह काम शुरू किया है, उससे यही लगता है कि हल्ला खड़ा करना और शासक वर्ग की छवि बचाना ही मीडिया का एकमात्र काम रह गया है; हालांकि कुछ अखबार और चैनल इस तरह के कार्यों के अपवाद भी हैं। उदारीकरण की हवा में मीडिया पूरी तरह से मस्त दिखता है। उदार, उधार और उजार मीडिया की नियति है। इस त्रिकोण में संचार माध्यम फंस चुका है। इससे बाहर निकलना इसके लिए असंभव है। प्रतिदिन हजारों-हजार मुद्दों को उठाना ठंडे बस्ते में डालना मीडिया का एसाईनमेंट है। ज्वलंत-ज्वलंत मुद्दों को ठंडा करने में मीडिया को महारथ हासिल हो चुका है; जिसे विद्वान भी स्वीकार कर चुके हैं। शायद इसलिए विद्वान भी इन सवालों पर मुँह खोलने की कसरत करते नजर नहीं आते हैं। इस उदारी दौर ने नैतिक पतन की मात्रा को काफी बढ़वा दिया है। नैतिक पतन के चलते मूल्यों का क्षरण चरम पर पहुँच गया है। मूल्यों के क्षरण ने जनतांत्रिक अधिकार को लहूलुहान किया है। जनतांत्रिक अधिकार पर जिस तरह से हमले हुए हैं, उसके चलते संत्रास का माहौल तैयार हुआ।

इस संत्रास ने समाज को भयभीत किया है। शासक वर्ग ने त्रास और संत्रास के जरिये संघर्षशील जनता को त्रस्त किया है। जहाँ एक समय प्रशासन की प्राथमिकता थी कि किसी तरह जनता को भयमुक्त किया जाय, वहीं आज प्रशासन का सिर्फ एक ही काम है कि जनता को भयाक्रांत बनाये रखा जाय। इसलिए कि शासक वर्ग की तानाशाही प्रवृत्ति समाज में स्थापित हो सके और जनता के बीच उसका हिटलरी दमन जारी रहे।

Scanned with CamScanner

इस उदारी हवा ने न्यायपालिका को भी बर्बादी के कगार पर पहुंचा दिया है। धीरे-धीरे अदालत शासक वर्ग के चुंगुल में फंस गयी है। यह भी खबरों छपती हैं कि अदालत में घूस सबसे अधिक चलता है। पैसे से न्याय खरीदने की खबरों ने इन दिनों मानव जीवन को भीतर ही भीतर कुंठित और दयनीय बनाया है। अदालत के निर्णयों को सरकार ने खुले आम अंगूठा दिखाया है। राज्य सरकारों से लेकर केंद्र सरकार तक सभी ने अदालत के फैसलों की अवमानना की है। शासक दल के नेताओं ने खुलेआम कहा है कि अदालत का काम है- फैसला देना; उन फैसलों को लागू करना या नहीं करना हमारा काम है। यानि उन नेताओं के कहने के अनुसार यही स्पष्ट होता है कि अदालत को वर्तमान शासक वर्ग ने ठूंठ बना दिया है। यह भी सुनने को मिलता है कि सरकार जैसा चाहती है, वैसा फैसला अदालत सुनाती है। शासक वर्ग सही मायने में अदालत पर हावी है। इससे न्यायपालिका कलुषित होती है। स्वंतत्र और निष्पक्ष होकर न्यायपालिका काम करे; यह गारंटी कौन देगा? क्या मीडिया को इसके सम्बन्ध में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए; जैसा कि फ़ज़ल ताविश ने कहा है -

कँधों पे है तो बोझ भी
है बेखबर भी है
बेहतर है उसको जलती सड़क पर उतार दो

कार्यपालिका लोभ-लालच की दुनिया से बाहर नहीं निकलना चाहती है! मुंह देखकर प्रशासनिक हस्तक्षेप करने से कार्यपालिका का प्रश्न-चिन्ह लगा है। इस प्रश्न-चिन्ह को मिटाने की क्षमता कार्यपालिका ने खो दी है। इसके कारण अपराधियों-कालाबाजारियों को काम करने का मौका मिला है। कार्यपालिका पूरी तरह असहाय और निरुपाय बन गयी है। नियम-कानूनों का उल्लंघन करना उसकी आदत का एक हिस्सा बन गया है। उसके इस अभ्यास ने समाज को कमजोर बना दिया है। लोगों की आस्था हिलने लगी है यदि समाज में विश्वास खत्म हो जायेगा, तो लोग संघर्ष से विमुख हो जायेंगे। इससे सबकी अग्रगति रुक जायेगी। इस स्थिति में लूम्पेन आगे आयेंगे।

आज चारों तरफ लूम्पेन ही दिखने लगे हैं। धोखा देने की प्रवृत्ति ने सामाजिक विकास को टूट के कगार पर पहुँचा दिया है। इससे आर्थिक विषमताएँ बढ़ी हैं। जनवाद को इससे नुकसान पहुँचा है। बड़े पैमाने पर रोजगार की समस्याएँ उत्पन्न हुई। मजदूरों को अभी तक अपनी मजदूरी के लिए लड़ना पड़ रहा है,

Scanned with CamScanner

जबकि मानव-समाज के कुछ खाये-पिये-अघाये लोगों का कहना है कि ऐसा समय फिर नहीं आयेगा। एक ओर अरबपतियों-खरबपतियों की संख्या बढ़ रही है, दूसरी ओर गरीब से गरीबतम बनने की प्रक्रिया बढ़ रही है। यदि समाज में एक करोड़पति बढ़ता है, तो लाखों की संख्या में दरिद्रों की संख्या बढ़ती है। इससे क्या देश आगे बढ़ेगा ?

बौद्धिक पिछड़ेपन ने राजनीति, दर्शन और संस्कृति को आक्रांत किया है। इस वजह से इतिहास कला-साहित्य को विकृत करने की प्रक्रिया तेज हुई है। प्रौद्योगिकी लोभ भी बढ़ा है। इस लालच ने मेहनतकशों के चिंतन जगत में भूचाल खड़ा किया है। इसके चलते जनपदीय भाषाओं और रीतियों से समाज को अलग-थलग करने की कुचेष्टा जारी हुई है। गाँव को शहर बनाने के चक्कर में किसानों को जमीन से अलग-थलग करने करने के खेल ने जिस तरह तूल पकड़ा है, ठीक उसी तरह मजदूरों को उद्योग लगाने का झांसा देकर उन्हें नये सिरे से बेकार बनाने की प्रवृत्ति ने विकराल रूप धारण किया है, जो चरम पर है। मजदूर-किसान सहित कर्मचारियों-शिक्षकों-छात्रों-युवाओं-महिलाओं को एक काल्पनिक दुनिया में ले जाने का ढंग चल पड़ा है। साफ-साफ कहने का समय आ गया है कि इस मायावी दुनिया से बाहर निकलने की जैसी पहल होनी चाहिए, वैसी पहल नहीं हो रही है। यही कारण है कि जनता त्रस्त है लोगों में आक्रोश है।

खासकर सांप्रदायिकता की राजनीति के विरुद्ध लोग एकजुट होना चाहते हैं। आम जनता की लामबंदी को सटीक दिशा देने के लिए दर्शन से लैस राजनीति की आवश्यकता है, आज इसी पर सबसे बड़ा खतरा है। जनतंत्रप्रेमियों को इस तरह के सभी खतरों का सामना करना पड़ेगा, तभी जाकर इस वर्तमान दौर में जनता के अधिकार को सुनिश्चित किया जा सकता है। जनवाद और जनतांत्रिक प्रक्रिया के सामने चाहे जितनी चुनौतियाँ पैदा हों, उनके बीच से संभावनाओं की तलाश करनी होगी तथा उन्हें हकीकत में बदलना होगा, तभी जाकर नयी पीढ़ी को एक मुकम्मल भविष्य मुहैय्या किया जा सकता है। जनतंत्र पसंद लोगों तथा राष्ट्रप्रेमियों का विवेकात्मक आंदोलन ही जनवाद की रक्षा की गारंटी है; यही वक्त की पुकार है और वक्त का तकाजा है। इसलिए कि देशभर में जनतांत्रिक संस्थाओं पर हमले हो रहे हैं। इसके चलते जनतंत्र विरोधी हवा उठने लगी है तथा जनतंत्र विरोधी माहौल तैयार होने लगा है इसका लाभ उठाकर बुर्जुआ दल यह चाहते हैं कि जनतंत्र के झंडे को मिट्टी में मिला दें। यही कारण है कि कुख्यातों-अपराधियों को चुनाव में खड़ा

Scanned with CamScanner

किया जाता है। संसद-विधान सभाओं में धीरे-धीरे अपराधियों की भीड़ बढ़ती जा रही है। उन अपराधियों के पास करोड़ों-करोड़ की संपत्तियाँ जमा होने लगी हैं। वे अपराधी न जनतंत्र को चलने देना चाहते हैं और न विधायिका को। इसका नतीजा गलत होता है। इसकी भरपाई आम जनता करती है। लेकिन अंधेरी रात ढलने का नाम नहीं ले रही है तो क्या करना चाहिए, तो क्या रोशनी की तलाश नहीं करनी चाहिए जैसा कि शहरयार ने कहा है-

सियाह रात नहीं लेती है नाम ढलने का
यही तो वक्त है सूरज के निकलने का

विधायिका के कमजोर होने से न्यायपालिका और कार्यपालिका दोनों कमजोर हो जाती हैं। इन तीनों की कमजोरियों का लाभ जनतंत्र विरोधी उठाने लगते हैं। न्यायाधीशों पर प्रश्न-चिन्ह लगाना और उन्हें सरेआम अपमानित करने की खबरें देखने को मिलती हैं। इससे खराब और क्या हो सकता है। इस प्रकार का शासन जनतंत्र के लिए खतरनाक है। उसके शासन में जनतंत्र चौपट हुआ है। यदि समय रहते जनतांत्रिक प्रक्रिया को दुरुस्त नहीं किया जाता है, तो आने वाले समय में यह जनतांत्रिक प्रक्रिया समाप्त हो जायेगी। तानाशाही प्रवृत्तियों को इसलिए बढ़ाया जाता है, ताकि गरीब-उत्पीड़ित जनता सीधे-सीधे जनतंत्र में हिस्सा न ले सके। जनतंत्र के विकास से तानाशाही प्रवृत्तियों पर कुठाराघात होता है। जनतंत्र विरोधी व्यक्ति का यही मकसद है कि किसी तरह से जनतांत्रिक प्रक्रिया से आमलोगों को काट कर अलग-थलग कर दिया जाय। अलग-थलग करने की प्रक्रिया तेज होती जा रही है। सरकारी तौर पर सोच-समझ कर यह प्रक्रिया तेज की जा रही है। खाये-पीये-अघाये लोगों को जनतंत्र में आस्था नहीं है।

जनतंत्र के मजबूत होने से उनकी समस्याएँ बढ़ती हैं। इन समस्याओं का समाधान करने के लिए सरकारी तौर पर जो हस्तक्षेप करना चाहिए, वैसा हस्तक्षेप नहीं हो पा रहा है। सरकार सोचे-समझे प्रकल्प के तहत इस जनतांत्रिक प्रक्रिया को पूरी तरह से चौपट करना चाहती है। इसके कई उदाहरण हैं। इस प्रक्रिया को समाप्त करने के सिलसिले में यह देखा जाता है कि सरकार जानबूझकर कानून-व्यवस्था को पंगु बना देती है। अपराधियों को पुष्ट करने के लिए तरह-तरह से सरंजाम दिखने लगता है। अपराधी सिर चढ़कर बोलने लगता है। गाँव-शहर में ऐसी घटनाएँ होने लगती हैं, जिनके बारे में सोचकर धृणा होने लगती है। ऐसा महसूस होता है कि किस मुल्क में रहने लगे हैं। चारों तरफ असुरक्षा का भाव फैल जाता है। समाज में महिलाएँ असुरक्षित हो जाती हैं।

Scanned with CamScanner

जनतांत्रिक प्रक्रिया को कमजोर इसलिए किया जाता है, ताकि गुंडों का राज्य कायम हो। इसी से स्पष्ट होता है कि लोकतंत्र की प्रक्रिया कितनी कमजोर पड़ गयी है। इस कमजोर पड़ती प्रक्रिया का फायदा उन लोगों को मिल रहा है, जो गुंडों के नेतृत्व में राज-पाट चलाना चाहते हैं। सवाल उठता है कि वे कौन हैं, जो गुंडों को आगे बढ़ाना चाहते हैं? इन ग्रामीणों की पहचान को किसने खत्म कर दिया है? ऐसा लगता है कि गोंडवी ने ठीक ही लिखा है-

हमारे गाँव का गोबर तुम्हारे लखनऊ में है
जवाबी ख़त में लिखना किस मोहल्ले का निवासी है

मानव समाज के शत्रु शासन का राज नष्ट करना चाहते हैं। शासन का राज चलाने की मांग गरीब-उत्पीड़ित करते हैं। वे शांति चाहते हैं। अशांत होने से दैनंदिन की प्रक्रिया बाधित होती है। ऐसी स्थिति में लूट चलाने में उन्हें आनंद मिलता है। लूट की संस्कृति फैलने लगती है। इससे समाज की अग्रगति नहीं हो पाती है। समाज की सारी स्वाभाविक प्रक्रिया बंद हो जाती है। खासकर शिक्षा-स्वास्थ्य क्षेत्र में अराजकता फैलती जाती है। ऐसी अराजक स्थिति पैदा हो जाती है, जिसे रोकना मुश्किल हो जाता है। मौकापरस्त लोगों को छूट मिल जाती है। जहाँ-तहाँ से रोने की आवाज आने लगती है। पूरा समाज त्रास की गिरफ्त में फंस जाता है। उद्योग-धंधे चौपट हो जाते हैं। भुखमरी चरम पर पहुँच जाती है। रोजगार-धंधा बंद हो जाता है। चारों तरफ से बिलबिलाने की खबरें आ जाती हैं। इस स्थिति में विदेशी शक्तियों को काम करने का मौका मिल जाता है। देश विरोधी गतिविधियाँ बढ़ जाती हैं। पृथकतावादी ताकतें सिर उठाने लगती हैं। देश के भीतर अराजक शक्तियों का बोलबाला बढ़ जाता है। सांप्रदायिकता की आग फैलने लगती हैं। समाज के सारे रिश्ते गायब हो जाते हैं। लोभ-लालच का नंगा नाच होने लगता है। अपने-पराये की दूरी खत्म हो जाती है। ऐसा माहौल इसलिए तैयार किया जाता है, ताकि जनता के अधिकार छीन लिये जायें। प्रतिवाद के सभी स्वरों को दबा दिया जाता है। इससे क्या होता है? संघर्षशील लोगों को लड़ने की ताकत मिलती है। अंधेरे को अब रोशनी दिखाने का समय आ गया है। जैसा कि मुनीर नियाज़ी ने कहा है-

रोशनी दिखा दूँगा, उन अंधेर नगरों में
एक हवा ज़ियाओं की चार-सूँ चला दूँगा

प्रतिवाद के स्वरों को दबाने से समाज की रीढ़ की हड्डी बाहर निकल आती है। ऐसे में समाज का विकास नहीं होता है। यदि कोई बोलने के लिए भी

Scanned with CamScanner

सामने आता है, तो उसके मुँह से लोभ-लालच की बू आने लगती है। चारों तरफ़ हाहाकार का माहौल बन जाता है। नेताओं के मुँह से कानून निकलने लगता है। वह अपनी मर्जी को संविधान से ऊपर समझने लगता है। संवैधानिक संस्थाओं की अवहेलना होने लगती है।

अराजक तत्वों को संवैधानिक संस्थान पसंद नहीं है। अराजक तत्व यही चाहते हैं कि उनके मातहत संवैधानिक संस्थान काम करें, यदि वे संस्थान उनकी मर्जी से नहीं चलते हैं, तो अराजक तत्व उन्हें कुचलने की राह अपनाते हैं। जनतंत्र में भरोसा रखने वालों के समक्ष जो समस्याएँ हैं, उन समस्याओं के प्रति समय रहते सावधान होने की आवश्यकता है। जनतंत्र को बचाने के लिए सामने आना होगा। जनतंत्र को बचाये बिना आगे बढ़ना मुश्किल है। क्या कोई समाज जनतंत्र के बिना बच सकता है या बढ़ सकता है? इस प्रश्न का उत्तर है; नहीं। परन्तु आजकल जनतंत्र को बढ़ाने के नाम पर बर्बाद किया जा रहा है।

अपराध के समक्ष सिर झुकाने से सभ्य समाज की गरिमा आगे नहीं बढ़ती है। सभ्य समाज को आगे बढ़ाने के लिए जनतांत्रिक माहौल की रक्षा करते हुए संवैधानिक संस्थानों पर हो रहे हमलों के विरुद्ध लामबंद होने की जरूरत है। इस लामबंदी को मजबूत करने के लिए जोरदार पहल करना आज का फौरी कार्य है। इस कार्य के जरिये समाज-संस्कृति-समय को आगे बढ़ाया जा सकता है। इस वास्तविकता को समझे बिना लोकतांत्रिक प्रक्रिया और संवैधानिक संस्थानों पर हो रहे हमलों को रोकना असंभव है। संवैधानिक संस्थानों को बचाना जनतंत्र की रक्षा की प्राथमिकता है। इस प्राथमिक को समझने की जरूरत है। आज नहीं तो कल इस पर गंभीरता से सोचना पड़ेगा। यह एक उम्मीद है, जो पल रही है। जावेद अख़्तर के शब्दों में -

कभी तो इंसान ज़िन्दगी की करेगा इज़्ज़त
ये एक उम्मीद आज भी दिल में पल रही है

उल्लेखनीय यह है कि लोकतंत्र को मजबूत करने में न्यायिक फैसलों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। यदि न्यायिक फैसलों का सही प्रयोग नहीं होता है, तो लोकतंत्र के लिए खतरे उभर सकते हैं। न्यायिक फैसलों को किस आधार पर देखना चाहिए; यह एक सवाल है। इस सवाल को मीडिया किस रूप में लेता है; यह महत्त्वपूर्ण है। लोकतंत्र के चौथे खंभे के रूप में मीडिया का नाम लिया जाता है। विभिन्न तरह की विसंगतियों के बावजूद यह कहना उचित है कि मीडिया लोकतंत्र के चौथे खंभे की

Scanned with CamScanner

भूमिका का निर्वाह करता है। इस चौथे खंभे और तीसरे खंभे के बीच रिश्ता मजबूत करना जरूरी है। इस रिश्ते को कौन मजबूत बनाने का प्रयास करेगा या यह प्रयास कैसे कारगर होगा, इस तरह के सवाल सामने आ गये हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि क्या जनतंत्र को सिर्फ न्यायिक फैसलों से मजबूत बनाया जाता है। जनतंत्र को मजबूत करने में न्यायिक फैसलों को आधार मान लेना एकमात्र रास्ता है। न्यायिक फैसलों को आज के संदर्भ में देखना क्या अनुचित है? न्यायिक फैसलों पर बार-बार विचार करना ठीक है या नहीं; यदि न्यायिक फैसलों के चलते लोकतंत्र के समक्ष संगतियाँ-विसंगतियाँ पैदा होती हैं, तो उन्हें किस रूप में देखना उचित है- इस तरह के असंख्य प्रश्न हैं जिन प्रश्नों पर विचार करना लाजिमी है।

सुप्रीम कोर्ट ने कुछ दिनों पहले एक फैसला सुनाया है, उस फैसले से यह पता चला है कि यदि कोई जनप्रतिनिधि दो साल से अधिक जेल में रहता है, तो उसकी सदस्यता खत्म हो जायेगी। इस फैसले से आने वाले समय में जनप्रतिनिधियों के सामने समस्याएँ उत्पन्न होंगी।

सुप्रीम कोर्ट को ऐसा फैसला देना चाहिए, जिससे यह लगे कि जनतंत्र मजबूत हो। यदि ध्यान से देखा जाय, तो शासक वर्ग ही जनतंत्र को कमजोर करने में जुटा रहता है। शासक वर्ग के सामने जब यह सवाल उठता है कि किसको चुनना चाहिए। जनतंत्र को या क्षमता को, ऐसी स्थिति में शासक वर्ग जनतंत्र को चुनता है। शासक वर्ग जनतंत्र के साथ मजाक करता है। उसका वह माखौल उड़ाता है। शासक वर्ग जनतंत्र को कलुषित करने के लिए बार-बार खराब रास्ता अख़्तियार करता है। आजादी के विगत 66 सालों में यह देखने को मिलता है। निदा फाज़ली ने ठीक ही कहा है-

तेरे होते कोई किसी की जान का दुश्मन क्यों हो
जीने वालों को मरने की आज़ादी दे मौला

जनता को बोलने नहीं दिया गया है, इसके सबूतों से इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं। अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य पर शासक वर्ग ने बार-बार प्रहार किया है। मतदान के दौरान शासक वर्ग ने गरीब-मेहनतकशों को वोट डालने से वंचित किया है। गरीब-मेहनतकशों के प्रतिनिधियों को जेल में शासक वर्ग ने बेवजह ठूंसा है। यदि किसी जनप्रतिनिधि ने सरकार की गलतियों पर सवालिया निशान लगाने की कोशिश की है, तो सरकारी दल के मुखिया ने उस जनप्रतिनिधि को जेल में ठूंस दिया। इस तरह के असंख्य उदाहरण रहने के बावजूद सुप्रीम कोर्ट ने एक बड़ा फैसला किस आधार

Scanned with CamScanner

पर दिया, यह कहना मुश्किल है। चाहे वह जिस आधार पर बड़ा फैसला दे, यदि उस फैसले से लोकतंत्र मजबूत नहीं होता है, तो उसे बदलना ही न्यायसंगत है। ऐसा नहीं है कि पहली बार न्यायिक फैसलों को बदलने की माँग की जा रही है! न्यायिक फैसलों में परिवर्तन भी हुआ है।

सही मायने में कानून बनाने के लिए प्रस्ताव विधायिका के भीतर ही आना उचित है; वहीं उस पर चर्चा हो, गंभीर चर्चा हो। चर्चा के बिना विधायिका से बाहर जाकर नियम-कानून बनाने से परोक्ष रूप से सत्ता पक्ष को बल मिलता है। सरकारी पक्ष उस कानून का नाजायज लाभ उठाता है। अपने देश में आम गरीब लोग नियम-कानून से वैसे ही डरते हैं। दूसरी ओर सत्ता सुख और सुविधा प्राप्त करने के लिए हजारों लाभ उठाते हैं; वे कौन लोग हैं, जो सत्ता सुख और सुविधा उठा रहे हैं। देखने पर पता चलेगा कि सभी के सभी शासक दल के सदस्य हैं। क्या क्षमता का गलत लाभ उठाने वालों या व्यक्तिगत सुविधा के लिए क्षमता का प्रयोग करने वालों के विरुद्ध सही कार्रवाई हो पा रही है। देखने पर पता चलेगा कि सत्ता के शीर्ष पर बैठने वालों को कोई नुकसान नहीं होता है तथा आम जनता को कोई लाभ नहीं मिल रहा है। ऐसी स्थिति में सुप्रीम कोर्ट को अपने फैसले से जनता के पक्ष में निर्णय देना चाहिए था। इस तरह के निर्णय से देश में लोकतंत्र मजबूत होगा। इसके मजबूत होने से देश और देशवासियों का चौतरफा विकास हो सकता है। इस दिशा में न्यायिक फैसले क्यों नहीं आते हैं?

इस वैश्वीकरण के युग में शीर्षस्थ अदालत भी कुंठित हुई है। उदारीकरण की हवा ने अदालत के चेहरे को भी धूमिल किया है। विगत बीस सालों में सुप्रीम कोर्ट ने जितने न्यायिक फैसले दिये हैं। उन तमाम फैसलों में अधिकतर ऐसे फैसले हैं जिनके चलते शासक वर्ग और शासक दल के हाथ मजबूत हुए। यह सच है कि इस तरह के फैसलों के चलते जन-आंदोलन को नुकसान हुआ है। जन-आंदोलन को दबाने के लिए हाईकोर्ट ने समय-समय पर फैसले सुनाये हैं। क्या विगत 20 सालों में एक भी फैसला ऐसा आया है, जिससे जन-आंदोलन को मजबूत होने का मौका मिला हो।

इस स्वतंत्र भारत में जन-आंदोलन को शासक दल और उसके द्वारा नियंत्रित मीडिया उसी रूप में देखता है, जिस रूप में राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन को परतंत्र भारत में देखा जाता था। परतंत्र भारत में भी ब्रितानी शासन ने अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य पर रोक लगायी थी, जो काम आज देशीय शासक दल कर रहे हैं। कहने के

Scanned with CamScanner

लिए वे शासक दल भारतीय हैं लेकिन उनके हाव-भाव से यही लगता है कि भारत की धरती पर किसी विदेशी शक्तियों का जलवा है। भारत की मिट्टी का रस और स्वाद उनके आचरण में दूर तलक नजर नहीं आते।

ऐसी स्थिति में लोकतंत्र को शक्तिशाली करने के लिए भारत के जनतंत्र प्रेमियों को आगे आना होगा; तभी जाकर देश की जनतांत्रिक प्रणाली मजबूत हो सकती है। वर्तमान समय में इस प्रणाली पर जो चौतरफा हमले हो रहे हैं, उन हमलों का विश्लेषण करने से यह पता चलता है कि शासक वर्ग ने सिर्फ अपनी सुविधाओं की खातिर आम जनता तथा उसके प्रतिनिधियों पर एक के बाद एक वार किया है। जनप्रतिनिधियों को गलत ढंग से झूठे मुकदमों में फंसाया गया है। इस तरह के तथ्य कई बार सामने आये हैं।

नियम-कानूनों को ताक पर रखते हुए शासक-दल चुनाव के दरम्यान गुंडों को खड़े करते हैं तथा किसी तरह जीतने की कोशिश करते हैं। जीतने के बाद मानो सात खून माफ किया जाता है। जोर-जोर से आवाज दी जाती है कि जीत हो गया। शासक दल जनतंत्र को विकसित होने नहीं देना चाहता है। यदि जनतंत्र प्रसारित होता है, तो शासक दल की सारी सच्चाइयाँ उजागर हो जायेंगी। शासक दल धाराशायी हो जायेगा। झूठ-फरेब-धूर्तता ही शासक दल के हथियार हैं। जब जनतंत्र मजबूत होगा, तब उसके हथियार ज्यों के त्यों रह जायेंगे। शासक दल का जनतंत्र और जनता की चिंता नहीं। उसे अपने लाभ और लोभ की चिंता ज्यादा है, जिसे इस तरह के न्यायिक फैसलों से बल मिलता है। इसलिए ऐसे फैसलों पर फिर से विचार करना अनुचित नहीं होगा। यदि सुप्रीम कोर्ट अपने फैसले पर पुनः विचार नहीं करता है, तो अराजक स्थिति पैदा होगी।

सुप्रीम कोर्ट के फैसलों को हथियार बनाकर शासक दल निजी मंशा पूरी करने की कोशिश करता है, तो समाज में अराजक स्थिति पैदा हो जायेगी। संविधान नहीं मानने से संत्रास पैदा होता है। ऐसी स्थिति में विपक्ष को कमजोर करने के लिए शासक दलों के हाथों में हमारी न्यायपालिका हथियार मुहैय्या कराती है, तो यह एक आश्चर्य नहीं भयानक स्थिति है। इस स्थिति से देश और देशवासियों को बाहर निकालने के लिए नैतिक मूल्यों को स्थापित करना सबसे बड़ा काम है। यह काम जनतंत्र को प्रसारित करने से ही संभव है। समाज के बुनियादी बदलाव में जन-आंदोलन की महती भूमिका है और आने वाले समय में भी रहेगी। यही आंदोलन जनतंत्र विरोधी सारी शक्तियों को समाप्त करेगा, जैसा कि इम्तियाज़ अहमद आज़ाद ने बिल्कुल सही कहा है-

वो जितना मिटना यक़ीनी है चन्द सालों में
सुना है हमने, परिन्दों में जान रखते हैं

❑❑❑

Scanned with CamScanner

प्रेमचंद और किसान-विमर्श

डॉ. राम आह्लाद चौधरी
हिन्दी विभाग
कलकत्ता विश्वविद्यालय
Mobile -9432051500
e-mail : ramahlad@gmail.com

भारतीय किसानों की वीरत्वपूर्ण संघर्ष-गाथा प्रेमचंद के कथा-साहित्य तथा विचारोत्तेजक लेखों में दृष्टिगोचर होता है। यही वे स्रोत हैं, जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि भारतीय किसानों के प्रति प्रेमचंद की हमदर्दी शत प्रतिशत है। वैसे तो प्रेमचंद का साहित्य दस हजार पृष्ठों पर फैला है, लेकिन प्रस्तुत शोध के स्रोत मात्र पांच हाजार पांच सौ पृष्ठों तक सीमित रखने का ध्येय है, जिन पृष्ठों पर किसान जीवन की स्पष्ट छाप है। उनके विचार पक्ष को उजागर किये बिना कृषि, किसान और गांव के प्रति उनके नजरिये को नहीं समझा जा सकता है। प्रेमचंद का विचार पक्ष पंद्रह सौ पृष्ठों तक विस्तृत है। उसी के अध्ययन-विश्लेषण से किसानों के प्रति प्रेमचंद का दृष्टिकोण स्पष्ट हो सकता है। यही स्पष्टता प्रेमचंद के किसान-विमर्श को और विकसित करेगी। साथ ही, प्रेमचंद के किसानों से सम्बंधित कई अनुसंधान हुए हैं। उन कार्यों पर यथार्थवादी दृष्टि डालने की जरूरत है।

मौजूदा समय में किसान-विमर्श की प्रासंगिकता बढ़ गयी है क्योंकि उदारीकरण-निजीकरण तथ आर्थिक सुधार का सबसे खराब असर किसानों पर पड़ रहा है। यह सच है कि प्रेमचंद का 'हल्कू' कज में डूबा हुआ था। लेकिन भयानक परिस्थिति से मुठभेड़ करने के बावजूद उसे खुदकुशी नहीं करनी पड़ी जबकि आज आये दिन खबर प्राप्त होती है कि अमुक राज्य में इतने किसानों ने आत्महत्याएं की, त कल तमुक राज्य में इतने किसानों ने आत्महत्याएं की। आजादी के ५०-६० साल बाद ऐसी घटनाएं केवल पीड़ादायक हैं बल्कि शर्मनाक भी हैं। क्या आजादी की लड़ाई में किसानों की भूमिका नहीं थी स्वतंत्र भारत में शासक-वर्ग ने उनके लिए कागजी घोड़े दौड़ाने के अतिरिक्त किया क्या? इधर कु दिन पहले खबर आयी है कि किसान नीति बनाने के लिए मसौदा तैयार किया गया है, जिसे अगर २००७ तक संसद में पारित कराने की योजना थी। लेकिन क्या हुआ? अभी तक कोई खबर इस ब में नहीं है। इस योजना के पारित होने तथा कानून बनने में कितना वक्त लगेगा या उस नीति से अ आदमी को कितना लाभ मिलेगा, कोई इसका ठोस उत्तर नहीं दे सकता, क्योंकि किसानों पर कित लोग सोचते या लिखते हैं। सच तो यह है कि प्रासंगिक विषय होने के बावजूद इसे 'ज्यों ब्राह्मण समा में अछूत' समझा जाता है। इसे बहस का मुद्दा बनाने के लिए तथा किसान के जीवन को बेहतर बन

Scanned with CamScanner

हेतु कारगर हस्तक्षेप करना बुद्धिजीवियों का नैतिक दायित्व है। पर कितने लोग इस नैतिक दायित्व को निभा सकते हैं। दायित्व को निभाये बिना इस विषय की प्रासंगिकता जाहिर नहीं हो सकती है।

खुदकुशी करने वाले किसानों का समय प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'पूस की रात' के नायक हल्कू से नहीं मिलता हो लेकिन दोनों की पीड़ाओं का असली स्रोत कर्ज लेना ही है। फर्क इतना ही है कि आज का किसान बैंक से कर्ज लेता है जबकि दूसरा सिर्फ महाजन से। जिन बैंकों का राष्ट्रीकरण आम लोगों के हित के लिए किया गया, उन्हीं बैंकों की पैशाचिक नीतियों ने किसानों के सामने किस तरह की समस्या खड़ी की है। अब किसी से छुपा नहीं रहा। उन नीतियों में किस तरह का और किस तरह से बदलाव आये-इसके लिए प्रेमचंद के पात्रों का सही विश्लेषण करना आवश्यक है। किसान-जीवन की वास्तविकताओं का वैविध्यपूर्ण चित्रण का अध्ययन करना आज की परिस्थितियों में जरूरी है, क्योंकि उसे समझे बिना किसान जीवन को खुशहाल बनाने के लिए सही दिशा में अग्रसर होना नामुमकिन है। उनकी रचनाओं में दीर्घकालिक जीवन-अनुभव तथा सूक्ष्म निरीक्षण मौजूद हैं, जो एक ओर सामाजिक ताना-बाना को उजागर करते हैं तथा दूसरी ओर इस विषय को और प्रासंगिक बनाते हैं।

प्रेमचंद के प्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान' का नायक होरी आधुनिक भारत का महान नायक है, जो शोषण-उत्पीड़न का निशाना बनाता है। फिर भी उसमें आज की सारी समस्यायों से मुठभेड़ करने की शिक्षा देने की क्षमता है। जीवन के विविध अनुभवों ने जीवन-बोध के अनसुलझे सवालों को खोलकर रख दिया है। यही वजह है कि उनके साहित्य में किसानों, खेत-मजदूरों और हरिजनों की मानवीय गरिमा ने जगह बनायी है। उन्होंने पिछड़े तबकों को नायक बनाकर कथा साहित्य को बहुआयामी बनाने का अद्वितीय काम किया है। समूचे देश के सक्रिय जीवन, जन-आंदोलन सामाजिक संघर्ष और जन-सामान्य को उनके कथा साहित्य में व्यापकता मिली है, जो उनकी रचनाओं का अजर-अमर तत्व है। उन्होंने १९१० से १९१६ तक 'सिर्फ एक आवाज', 'कैफरे-किरदास', 'खून सफेद' जैसी कई कहानियां लिखीं, जिन कहानियों के नायक किसान हैं। उनका शोषण महंतों, महाजनों और जमींदारों के हाथों होता है।

'प्रेमाश्रम', 'कर्मभूमि' और 'गोदान' जैसे उपन्यासों के अतिरिक्त उनकी अनगिनत ग्रामीण कहानियों में किसानों की बहुआयामिता, गहराई और सघनता विद्यमान हैं जो उन्हें अद्वितीय कलात्मक ऊँचाइयों तक पहुंचाती हैं। उनकी कृतियों में युगीन सामाजिक जीवन की मूलभूत समस्याएं सघनता के साथ विद्यमान हैं। उनके पात्रों में पराधीनता के प्रति खीझ और बेचैनी है तथा वर्ग-संघर्ष से संबद्धता है। इसी संबद्धता के कारण उनका संघर्ष अक्षुण्ण है। हल्कू इसी कारण विकट परिस्थिति में भी अपना मित्र चुन लेता है। वह मित्रता कैसी अनोखी है, इसकी एक बानगी 'पूस की रात' कहानी में प्रस्तुत है :– 'जब किसी तरह न रहा गया तो उसने जबरा को धीरे से उठाया और उसके सिर को थपथपाकर उसे अपनी गोद में सुला दिया। कुत्ते की देह से न जाने कैसी दुर्गंध आ रही थी, पर वह उसे अपनी गोद में चिपटाये हुए ऐसे सुख का अनुभव कर रहा था, जो इधर महीनों से उसे न मिला था।'

प्रेमचंद के पात्र अत्याचारी शक्तियों के खिलाफ जंग करते हैं। उदाहरण के लिए मनोहर, बलराज, सूरदास के नाम लिये जा सकते हैं। और आज भी कितने मनोहर, बलराज को अशुभ शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष करना पड़ रहा है। यदि प्रेमचंद के किसानों खेतमजदूरों के जीवन के सुख-दुख को समझने की चेष्टा की जाती है, तो आज के किसानों-खेतमजदूरों की समस्याओं का [illegible]

Scanned with CamScanner

उनका साहित्य समस्याओं के साथ-साथ निदान प्रस्तुत करता है। इस निदान को आज के संदर्भ में इस्तेमाल किया जा सकता है। यह सच है कि उनके द्वारा प्रस्तुत किये गये हलों को उपकरण के तौर पर उपयोग नहीं किया जा सकता है, लेकिन अनुभव के तौर पर सिखा जी जा सकती है। कहा भी जाता है कि साहित्य से अनुभव से सिखा मिलती है, जो जीवन की पूंजी होती है। इस पूंजी में आत्मसाइज से बोधवृद्धि होती है यानी कि आत्मसाइज ही जिंदगी का दूसरा नाम है। जीवन में आत्मसाइज करने के सम्बन्ध में प्रेमचंद का नजरिया इस प्रकार का है– आत्मसाइज ही इंसान बनाती है और इसी से आदमी में दृढ़ता पैदा होती है। इस दृढ़ता के बिना जीवन को खुशहाल नहीं बनाया जा सकता है। जैसा कि 'सोवियत में दर्शन शास्त्र के प्रोफेसर मेहता ने कहा है– 'जीवन को सुखी बनाना ही उपासना और पोथा है।'

प्रेमचंद साहित्य का अंतरराष्ट्रीय महत्व सर्वव्यापी है। उन्होंने जितने भी प्रश्न उठाये हैं, उन सभी प्रश्नों ने अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर अपना प्रभाव छोड़ा है। उनके उपन्यास भारत की उन गंभीर चुनौतियों पर प्रकाश डालते हैं, जिनका सम्बन्ध एकमात्र भारत के ही हितों से नहीं, सारे संसार के हितों से है। इस तरह अन्तरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में उनका किसान विमर्श विकसित होता है। विकसित, विकासमान तथा पिछड़े देशों में भी किसानों के सामने विभिन्न तरह की समस्याएं हैं। भारत जैसे विकासमान देश के किसानों की समस्याओं के अध्ययन से किसी नये रास्ते की तलाश संभव है। यह रास्ता संघर्ष का रास्ता ही होगा। यदि कोई ठोस चीज उभर कर आती है, तो उसका निश्चित राष्ट्रीय महत्व होगा। यही महत्ता इस शोध की भी महत्ता बन सकती है। राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय जगत में बढ़ती विभिन्न चुनौतियों के सही आकलन से आगे बढ़ने में सहायता मिल सकती है। इस सहायता से मानव जीवन लाभान्वित होगा। किसानों के जीवन को सुधारने तथा उनके जीवन में सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिए समाज में आवाज बुलंद हो सकती है, जिससे समाज जाग्रत हो सकता है।

महत्व के बिना अनुसंधान का कोई मायने नहीं है। शोध का महत्ता दृष्टिकोण पर निर्भर होती है। क्योंकि एक खास सिद्धांत तक पहुंचने के लिए दृष्टि की आवश्यकता पड़ती है। प्रेमचंद ने इस वर्ग विभाजित समाज को एक खास नजरिया से देखा है। आर्थिक समझदारी किसी भी वस्तु को समझने में मदद देती है। आर्थिक विवेचन विश्लेषण के बिना सामाजिक पहलुओं का परीक्षण-निरीक्षण असंभव है।

आज हिन्दी साहित्य में आलोचना-अनुसंधान संतोषजनक होते हुए भी मूल लक्ष्य से अलग-थलग पड़ा हुआ है। यदि गहराई से विचार किया जावे तो स्पष्ट होगा कि हिन्दी साहित्य के आलोचना-अनुसंधान में वर्गीय सोच का अभाव है। और यदि वर्ग विभाजित समाज में वर्गीय सोच ही गायब हो, तो निश्चित तौर पर यह कहा जा सकता है कि हिन्दी आलोचना को अपनी मंजिल तक पहुँचने में युग-युग का समय गवाना पड़ सकता है। इसलिए हिन्दी आलोचना की समृद्धि परम्परा की हिफाजत करने के लिए, वर्गीय अवधारणा को स्थापित करना नितांत आवश्यक है। इसलिए किसान विमर्श पर प्रेमचंद की अवधारणा को स्पष्ट करना उद्देश्य है। आज दलित विमर्श, स्त्री विमर्श का हंगामा खड़ा किया जा रहा है। यह सच है कि युग-युग से दलितों, स्त्रियों पर अत्याचार-उत्पीड़न जारी है। यदि उन उत्पीड़ित-शोषितों की आर्थिक दशा विचार किया जाय, तो स्पष्ट होगा कि वे सभी कृषि से जुड़े हुए थे। जब कृषि व्यवस्था से जुड़े हुए थे, तब उस व्यवस्था पर हो रहे हमलों के स्रोत को खोजना जरुरी है। उन स्रोतों की समीक्षा करने से यह प्रमाणित होगा कि साम्राज्यवाद-सामंतवाद विरोधी आंदोलनों की मुख्य शक्ति कहां संचित थी। वह

Scanned with CamScanner

शक्ति मुख्यतः किसान समुदायों में संचित थी। इसलिए कृषि और किसानों के द्वंद्वात्मक अध्ययन की महत्ता बढ़ जाती है।

उन दलितों, स्त्रियों को उत्पीड़न से मुक्ति दिलाने के लिए मानव मुक्ति के जद्दो जहद की जरूरत है। मानव मुक्ति के संघर्ष को तेज करने से ही, जिस तरह से समाज में वर्ग संघर्ष तेज होगा ठीक उसी तरह से दलित और महिला अपने शत्रुओं के नख-दंत की ताकतों से परिचित होंगे। अतः स्पष्ट है कि शोषण, उत्पीड़न के मूल कारणों की तलाश करने से वे उन सारी समस्याओं का निदान सामने आ सकता है जिसके लिए आलोचकों की लेखनी बेचैन है। साथ ही भारत की अर्थ व्यवस्था की मूलाधार कृषि की चुनौतियों का सामना किया जा सकता है।

प्रेमचंद की महत्ता को कहानियों-उपन्यासों में खोजना आसान है। महत्ता खोजने के इस कार्य को उनके विचार में तलाश करना आवश्यक है। अगर गंभीरता से विचार देखने का प्रयास किया जाता है, तो यही मिलता है कि कहानियों-उपन्यासों में भी एक तरह का विचार होता है। इस विचार के विभिन्न आयाम होते हैं। उन आयामों को एक आधार पर देखने के लिए मानदंड निर्धारित किया जाता है। इस मानदंड की बुनियाद जीवन है। जीवन के बिना साहित्य क्या है? इस सवाल का उत्तर नकारात्मक में ही दिया जाता है। जीवन के बिना साहित्य बेकार है। प्रेमचंद ने 'जीवन में साहित्य का स्थान' शीर्षक लेख में जीवन और साहित्य पर गंभीरता से विचार किया है। उनके शब्दों में– ''साहित्य का आधार जीवन है। इसी नींव पर साहित्य की दीवार खड़ी होती है। उसकी अटारियां, मीनार और गुम्बद बनते हैं; लेकिन बुनियाद मिट्टी के नीचे दबी पड़ी है। उसे देखने को भी जी नहीं चाहेगा। जीवन परमात्मा की सृष्टि है, इसलिए अंनत है, अगम्य है। साहित्य मनुष्य की सृष्टि है, इसलिए सुबोध है, सुगम और मर्यादाओं से परिमित है। जीवन परमात्मा को अपने कामों का जवाबदेह है या नहीं, हमें मालूम नहीं; लेकिन साहित्य तो मनुष्य के सामने जवाबदेह हैं। इसके लिए कानून हैं। जिनसे वह इधर-उधर नहीं हो सकती। जीवन का उद्देश्य ही आनंद है। मनुष्य जीवन पर्यंत आनंद ही की खोज में लगा रहता है। किसी को वह रत्न द्रव्य में मिलता है, किसी को भरे-पूरे परिवार में किसी को लम्बे-चौड़े भवन में, किसी को ऐश्वर्य में; लेकिन साहित्य का आनंद इस आनंद से ऊँचा है, इससे पवित्र है, उसका आधार सुंदर और सत्य है।''[1] वास्तविक सुन्दरता का दर्शन सत्य से होता है। उसके आधार भी कई हो सकते। सुंदर और सत्य के बिना सच्चा आनंद नहीं मिल सकता है। इसकी खोज करना ही साहित्य का उद्देश्य है। ऐश्वर्य या भोग के पीछे ग्लानि छिपी होती है। इसके सम्बन्ध में प्रेमचंद की अवधारणा स्पष्ट है। इस तरह के भोग-विलास से अरुचि पैदा होती है। उससे पश्चाताप उत्पन्न होता है। वही आनंद अमर और अखंड है, जो सुंदर से प्राप्त होता है। साहित्य के नौ-रसों से आनंद ही मिलता है। साहित्य को राजा के महल से लेकर रंक की झोंपड़ी तक सुन्दरता खोजनी होती है। रंक की झोपड़ी में सुन्दरता जितनी आसानी से मिलती है, उतनी आसानी से सुंदर महल में मूर्तिमान नहीं होता। दो जगहों पर जीवन है। और जीवन है क्या इस प्रश्न का उत्तर प्रेमचंद ने इसी लेख 'जीवन साहित्य का स्थान' में सही रूप से प्रस्तुत किया है– ''जीवन केवल जीना, खाना, सोना और मर जाना नहीं है। यह तो पशुओं का जीवन है। मानव जीवन में भी यह सब प्रवृत्तियां होती हैं, क्योंकि वह भी पशु है। पर इनके उपरांत कुछ और भी होता है। उसमें कुछ ऐसी मनोवृत्तियां होती है, जो प्रकृति के साथ हमारे मेल में बाधक होती हैं।

Scanned with CamScanner

कुछ ऐसी होती हैं, जो इस मेल में सहायक बन जाती हैं। जिन प्रवृत्तियों प्रकृति के साथ हमारा सामंजस्य बढ़ता है, वह वांछनीय होती हैं; जिनसे सामंजस्य में बाधा उत्पन्न होती है, वे दूषित हैं। अंहकार, क्रोध या द्वेष हमारे मन की बाधक प्रवृत्तियां है। यदि हम इनको बेरोकटोक चलने दें, तो निस्संदेह वह हमें नाश और पतन की ओर ले जाएंगी। इसलिए हमें उनकी लगाम रोकनी पड़ती है, उन पर संयम रखना पड़ता है, जिसमें वे अपनी सीमा से बाहर न जा सकें। हम उन पर जितना कठोर संयम रख सकते हैं, उतना ही मंगलमय हमारा जीवन हो जाता है।"[1]

प्रेमचंद ने जीवन को मंगलमय बनाने के लिए कथा-लेखन को अपनाया। हिन्दी कथा–साहित्य को उन्होंने जो ऊँचाई प्रदान की, वैसी ऊँचाई खोजने पर भी मिलना मुश्किल है। इसलिए हिन्दी साहित्य के महान आलोचकों की नजर में प्रेमचंद द्वारा अपनायी गयी उस राह को प्रस्तुत करना आवश्यक है, जिस राह पर चलते हुए प्रेमचंद हिन्दी के कथा सम्राट हो गये। इस बारे में यही कहना उचित है कि प्रेमचंद ने जीवन को सही ढंग से पहचान लिया। इसको पहचानने में यदि किसी तरह की गलती होती तो आगे बढ़ना मुश्किल होता। चिंतक जाफर रजा ने कहानी की तात्विकता पर विशद चर्चा करते हुए प्रेमचंद के सम्बन्ध में एक अच्छी बात कही है– "प्रेमचंद हिन्दी-उर्दू कथा साहित्य में पर्वत के उस उच्च शिखर का नाम है, जिसके दोनों ओर ढलान है। इस पर्वत के दामन में समतल, ऊँचा, उपजाऊ भूमण्डल है, जो अत्यंत सिंचित एवं हरा-भरा है। रंग-बिरंगे फूलों, स्वादिष्ट फलों, मधुकंठी पक्षियों और भांति-भांति के मानवों से आबाद है। बहुत दूर तक चलने पर एक अत्यंत सुन्दर वादी मिलती है, जिनमें कई छोटी-छोटी बस्तियां हैं, जो एक नदी के किनारे आबाद हैं। ये नदी उसी उच्च पर्वत के शिखर से निकली है और वादी की प्रत्येक बस्ती को सिंचित एवं तृप्त करती रहती है।"[1]

इसी तृप्ति ने हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेमचंद को अमर बनाया है। उन्होंने कथा-साहित्य को विस्तार दिया। विविध विषयों के जरिये मानव सभ्यता की विभिन्न तहों की पड़ताल की, विभिन्न चरित्रों के माध्यम से हिन्दुस्तान को समझने की कोशिश की। हिन्दुस्तान की एकता और अखंडता, खासकर उसके धर्मनिरपेक्ष ताने-बाने में प्रेमचंद द्वारा लिखित कथा-साहित्य यथार्थ से रूबरू कराता है। उस कथा-साहित्य की अपनी खास मर्यादा है, जो उस मर्यादा को समझने की कोशिश नहीं करते हैं, वे सिर्फ उनकी कहानियों-उपन्यासों का सारांश बतलाते हैं और जो उनके कथा साहित्य में प्रवेश करते है, उसे समझने की चेष्टा करते हैं, उसकी प्रासंगिकता पर विचार-विमर्श करते हैं, उन्हें प्रेमचंद के कथा साहित्य में आधुनिक अर्थवत्ता का पता चलता है। प्रेमचंद ने कथा-विविधता को एक संयम रूप दिया। इस रूप की वैसी अभिव्यक्ति हिन्दी कथा साहित्य में पहले देखने को नहीं मिलती हैं। हिन्दी कथा-साहित्य के एक भी आलोचक नहीं मिलेंगे, जिन्होंने प्रेमचंद के अवदान को स्वीकार न किया हो। कोई यह भी नहीं कहेगा कि प्रेमचंद ने हिन्दी कथा-साहित्य को आगे नहीं बढ़ाया। सिर्फ कहानियों-उपन्यासों के आधाार पर नहीं बल्कि कहानियों-उपन्यासों के इतिहास पर भी प्रेमचंद की अदभुत पकड़ थी। इसी समझ ने प्रेमचंद को सफलता के शिखर पर पहुँचा। यह भी सच है कि सफलता का मानदंड क्या है या कोई कथा-साहित्य के अन्तर्गत अपना मुकाम बना ही लेता है, तो उससे समाज को क्या लाभ मिलता है। समाज उससे किस रूप में प्रभावित होता है। वैसे कथा शिल्पी का मूल्यांकन कैसे किया जाय। प्रेमचंद के मूल्यांकन भी विभिन्न तरह से किये गये हैं। अध्ययन की पद्धतियां भी अलग-अलग है, निष्कर्ष भी अलग-अलग निकल सकते

Scanned with CamScanner

हैं। उन्हीं सबको लेकर विविधता का स्वरूप निर्धारित होता है। आधुनिक भारत को समझने, भारत के किसान और यहां की संस्कृति को प्रेमचंद की रचनाओं के जरिये ही समझा जा सकता है। मानव जीवन का संघर्ष, मजदूरों का श्रम, किसानों का जदोजहद, ब्रिटिश उपनिवेश का नाच, दलितों स्त्रियों की परछाइयां प्रेमचंद की रचनाओं में मिलती हैं। प्रेमचंद की रचनाओं में समस्याओं का सिर्फ जिक्र नहीं हुआ, उनके स्रोत की जांच की गयी है। गहराई में उतर कर प्रेमचंद ने सत्य का खोजा है। इस बारे में जाफर रजा ने उल्लेख किया– ''प्रेमचंद ने जिस वर्ग की समस्याओं को अपनी रचना का विषय बनाया है, उसमें उन्होंने पथप्रदर्शक बनने से अधिक उनके मध्य एक व्यक्ति बनना पसंद किया और निष्पक्षता का पक्षधर बनकर किसी उच्च कुर्सी से आदेश देने के बजाय उन समस्याओं का व्यक्तिगत रूप से परखा है। उन्होंने अपनी लेखनी को माध्यम बनाया है। उनकी दृष्टि में साहित्य आदर्श स्थान रखता है, जो जीवन के सुधार का आधार या माध्यम हो सकता था। प्रेमचंद ने निराशा को व्यक्त नहीं किया, बल्कि जीवन के आशावान मूल्यों को उभारने का प्रयास भी किया। ऐसे समय में जब समाज पर निराशा हावी हो। मायूसी और असमर्थता अपना स्थान बना रही हो इस प्रकार के उद्यम का प्रदर्शन स्वतः एक उच्च एवं महान उपलब्धि हैं।''[४]

यह उच्च एवं महान उपलब्धि की राह दोस्ती की होती है। साहित्यकार इसी राह को अपनाता है, जो समानता और श्रेष्ठता की राह कही जाती है। यह भी नहीं है कि उसमें तर्क नहीं होता। तर्क होते हुए भी कल्पना और भावना होती है। सामाजिक अध्ययन के लिए इन तीनों की जरूरत है। प्रेमचंद की लेखनी में इन तीनों का समागम हुआ है। यदि कोई कहता है कि तर्क के साथ कल्पना या भावना मेल असंभव है, तो प्रेमचंद के कथा-साहित्य को देखें तथा उनके पात्रों के कथोपकथन को समझे। कहने का यही अभिप्राय है कि तर्क, कल्पना और भावना को समझने से सामाजिक अध्यन की जटिलताओं को समझा जा सकता है।

प्रेमचंद ने अपने कथा-साहित्यों में इन तीनों प्रवृत्तियों को एक हथियार के रूप में इस्तेमाल किया है, इसलिए उन्होंने जो सामाजिक अध्यन प्रस्तुत किया, उसमें दूर तक जटिलता नजर नहीं आती। यही कारण है कि प्रेमचंद का कथा-साहित्य सामाजिक प्रवृत्तियों का द्योतक होते हुए भी भविष्य का पथ-प्रदर्शक है। रामविलास शर्मा ने 'प्रेमचंद और उनका युग' नामक पुस्तक में सही लिखा है– ''प्रेमचंद हिन्दुस्तान की नई राष्ट्रीय और जनवादी चेतना के प्रतिनिधि साहित्यकार थे। जब उन्होंने लिखना शुरु किया था, तब संसार पर पहले महायुद्ध के बादल मँडरा रहे थे। जब मौत ने उनके हाथ से कलम छीन ली, तब दूसरे महायुद्ध की तैयारियां हो रही थीं। इस बीच विश्व-मानव-संस्कृति में बहुत परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों से हिन्दुस्तान भी प्रभावित हुआ और उसने उन परिवर्तनों में सहायता भी की। विराट मानव-संस्कृति की धारा में भारतीय जन-संस्कृति की गंगा ने जो कुछ दिया, उसके प्रमाण प्रेमचंद के लगभग एक दर्जन उपन्यास और उनकी सैकड़ों कहानियां हैं।''[५]

राम विलास शर्मा की यह पुस्तक 'प्रेमचंद और उनका युग' प्रेमचंद और उनके कथा साहित्य पर एक प्रमाणित पुस्तक है। इस पुस्तक से हजारों छात्रों का उपकार हुआ है। राम विलास शर्मा ने स्पष्ट शब्दों में यही कहने का प्रयास किया है कि भारतीय जन-संस्कृति की गंगा का मूल्यांकन करना है, तो प्रेमचंद के कथा साहित्य को छोड़ देने से नहीं होगा। भारत की जनता ने विभिन्न कठिनाइयों को पार

Scanned with CamScanner

किया है, पर उसे अभी तक वह मंजिल नहीं मिली, जिसके सम्बन्ध में यह कह सके, आगे और कह सके कि हां, यह मंजिल है। इसलिए प्रेमचंद ने भारतीय जनता को और आगे बढ़ने की हिम्मत दी है, जैसा कि प्रेमचंद ने कहा है कि यह अंत नहीं है, और आगे बढ़ो और आगे बढ़ो जब तक कि रणभूमि में विघ्न न हो, जब तक कि देश का कायाकल्प न हो जब तक कि इस कर्मभूमि में पतन और शोषण के होरी और रामनाथ का जमत होना बंद न हो और हमारा देश एक नई तरह का सेवा सदन, एक नई तरह का प्रेमाश्रम न बन जाए। प्रेमचंद का यह राष्ट्र प्रेम था। इसकी महिमा असाधारण थी। आज भी उनकी रचनाओं के जरिये हम भारतीय जनता के संघर्ष को आगे और आगे ले जा सकते हैं। तभी जाकर युग-युग से प्रताड़ित जनता को शोषण से मुक्ति दिला सकते में कामयाब हो सकते। इस संघर्ष में मार्क्सवाद का अध्ययन एक जरुरी उपादान बन जाता है। वैसे प्रेमचंद ने मार्क्सवाद का विधिवत अध्ययन नहीं किया था, लेकिन उन्होंने पूरी आस्था के साथ वर्ग-संघर्ष को स्वीकार किया। उनकी रचनाओं ने गरीब-उत्पीड़ित किसानों और हरिजनों को एक मजबूत आधार दिया है। उत्पीड़न का मुकाबला किस रूप में किया जाय, इस सवाल पर उनकी लेखनी ने किसी तरह की राजनीति या कार्यनीति प्रस्तुत नहीं की। यह संभव भी नहीं है। सभी जानते हैं कि साहित्यकार न रणनीतिकार होता है और कार्यनीतिकार। इसे इस रूप में भी प्रस्तुत किया जा सकता है कि साहित्यकार के कार्यों को दार्शनिक की भावना से भी बढ़कर आगे देखना उचित होगा। प्रेमचंद की रचनाओं में तत्कालीन युगीन चेतना ने अपनी पूरी ताकत को व्यक्त करने की कोशिश की है। यही कारण है कि उस वक्त भारत की धरती पर जितनी मौजूद शक्तियां थीं, उन शक्तियों को किसी न किसी रूप में प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। इसलिए उनकी रचनाओं में यथार्थ और कल्पना का समन्वय हुआ। यह बात अलग है कि उन्होंने कथा-शिल्प को नये-नये प्रतिमानों तथा नये-नये बिम्बों से सजाने का साहसिक कदम उठाया है। इसी तरह के साहसिक कदम को देखकर प्रेमचंद के रचना-संसार के अन्तर्गत किसी आलोचक ने गांधीवाद का प्रभाव देखा है, तो किसी आलोचक विद्वान ने मार्क्सवाद का। किसी विद्वान ने उनके कथा-साहित्य में गांधीवाद से समाजवाद की यात्रा का मूल्यांकन किया। इस पर यदि ध्यान दिया जाय तो कमर रईस ने एक मार्के की बात की है कि जब प्रेमचंद ने मार्क्सवाद का विधिवत अध्ययन नहीं किया था, तब उन्होंने उत्पीड़न के विरुद्ध लड़ने की राह कैसी अपनायी। सवाल यही उठता है कि क्या मार्क्सवाद के अध्यन के बिना उत्पीड़न का मुकाबला किया जा सकता है? क्या कुछ प्रवृत्तियों के आधार पर कुछ चरित्रों को गढ़ लेने से शोषण की इतनी मजबूत दीवार को एक क्षण में तोड़कर गिराया जा सकता है। क्या इस महती कार्य को अंजाम देने के लिए किसी भाववादी तत्त्वों को अपनाना उचित है? इन तमाम सवालों का उत्तर खोजने का प्रयास शुरु करते हुए यह कहना अनुचित नहीं होगा कि इस दुनिया को बनाने और उसे आगे बढ़ाने में न केवल यर्थावाद में विश्वास रखने वाले चिंतकों की भूमिका है बल्कि जिन्होंने वास्तविकता की भूमि से अपने-आप को अलग रखा है, उन्होंने भी इस दुनिया को आगे बढ़ाने में सक्रिय भूमिका निभाई है। इस सक्रिय भूमिका की सीमा हो सकती है, लेकिन उसकी अर्थवत्ता को खारिज करना न उचित है और न जरूरी। यही कारण है, जिसके चलते प्रेमचंद की रचनाओं में युग-चेतना खुलकर बोलने लगती है। 'गांधीवाद से समाजवाद तक' शीर्षक लेख में कमर रईस ने लिखा है– "प्रेमचंद ने यद्यपि मार्क्सवाद का बकायदा अध्ययन नहीं किया था। लेकिन वह वर्ग-संघर्ष के सिद्धांत को मानते थे और एक मुद्दत तक वह गांधी

Scanned with CamScanner

जी के प्रभाव में आकर वह भी समझते थे कि हमारा शासन वर्गों को मिटा और श्रमिक शोषण के कारण पूंजीपति और वैयक्तिक प्रतियोगिता के वातावरण से अपने अधिकार और अधिकारों के अलग करने की कोशिश करनी चाहिए। इसके बहुत से उदाहरण उनकी कथा-रचनाओं में देखे जा सकते हैं। लेकिन इसके साथ ही गांधी जी की दृष्टिकोण सम्बन्धी धारणा के कभी कायल नहीं हुए। प्रेमचंद का मत था कि वर्गविहीन समाज और समानता के लिए एक वर्गहीन समाज की स्थापना जरूरी है। इसलिए वह गांधी जी की धारणा के विपरीत पूंजीवादी समाज को तुरन्त ही समाजवादी व्यवस्था का बीजारोपण मानते थे।"[5]

कौन नहीं जानता है कि भारत में गरीबों की संख्या सबसे अधिक है, पर आज उनके प्रतिनिधि करोड़पति हैं। यानी भारत जैसे गरीब देश की संसद में करोड़पतियों की संख्या 340 से अधिक है। यह आंकड़ा दिसंबर '94 में लोकसभा चुनाव के बाद आया है। प्रेमचंद ने इसके सम्बन्ध में बहुत पहले ही कहा था कि यह आश्चर्य है। सोशलिज्म के सिवा मजदूरों का कोई दूसरा आदर्श नहीं हो सकता है। उन्होंने अपने लेख 'कांग्रेस और सोशलिज्म' में सच को इस तरह से देखते हुए लिखा है– 'भारत जैसे देश में जिसमें आबादी का बड़ा हिस्सा गरीबों का है। जिसमें पढ़े–अनपढ़ सब तरह के मजदूर हैं। सोशलिज्म के सिवा उनका कोई आदर्श हो ही नहीं सकता। अगर आज कांग्रेस पार्टी का रिफेरेन्डम हो तो हमारा ख्याल है कि अक्सरियत सोशलिज्म की होगी पर एक ही दो कदम पीछे कम्युनिज्म भी नजर आता है ऐसी संस्था (कांग्रेस) मध्य इस खौफ से कि मुट्ठी भर सरमायादारों का सहयोग उसके हाथ से जाता रहेगा, अपने आदर्शों को त्याग नहीं सकता।' सभी जानते हैं कि वर्गीय हित को कोई जल्दी नहीं छोड़ता। जमींदार, महाजन या पूंजीपति अपने हित की रक्षा करने के लिए एक से बढ़कर एक तिकड़म भिड़ाता है। इस तरह के तिकड़म को तोड़ना तभी संभव हो सकता है, जब वर्गीय अवधारणा को सभी तरह से आत्मसात किया जाय। प्रेमचंद ने हिन्दी कथा-साहित्य को इस अवधारणा से पुष्ट किया है। उदाहरण के लिए प्रेमचंद के इस लेख को प्रस्तुत किया जा सकता है, जिसका शीर्षक है– 'अंधा पूंजीवाद'। इस लेख का प्रकाशन नवम्बर १९३३ में हुआ था। जिसमें प्रेमचंद ने लिखा है– 'यह आशा करना कि पूंजीपति किसानों की बदहाली से लाभ उठाना छोड़ देंगे, कुत्ते से घनड़े की रखवाली करने की आशा करना है। इस खूंखार जानवर से अपनी रक्षा करने के लिए हमें खुद ही हथियारबंद होना पड़ेगा।' कमर रईस ने इसी लेख 'गांधीवाद से समाजवाद तक' में आगे लिखा है– "यह तथ्य है कि १९३३ के बाद प्रेमचंद गांधीजी के विचारों से दूर तथा उनके नेतृत्व से निराश होते जा रहे थे। इस जमाने में लिखे अपने कई लेखों में उन्होंने सम्मान के साथ गांधी जी की कार्य-शैली और उनके विचारों से मतभेद प्रकट किया है। यह भी एक सच्चाई है कि जैसे-जैसे वह गांधी जी के विचारों से दूर होते जा रहे थे, वैसे-वैसे समाजवाद से निकट आते जा रहे थे। इस दौर में वह पंडित जवाहरलाल नेहरू के समाजवादी विचारों तथा उनके द्वारा गठित 'सोशलिस्ट कांग्रेस' से भी प्रभावित हुए और वैचारिक स्तर पर उसके समीप आये। वह इस वास्तविकता को समझ चुके थे कि समाज और उसकी सभी संस्थाओं का आधार उसकी अर्थ-व्यवस्था है जिसे बदले बिना समाज में किसी परिवर्तन की कल्पना नहीं की जा सकती। उनकी दृष्टि में राष्ट्रवाद, पूंजीवाद की देन थी और इसे वह मनुष्य जाति की स्वतंत्रता और विकास के मार्ग में बाधक समझते थे।"[6]

यह सच है कि जब तक संपत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार रहेगा तब तक मानव विकास की धारा सुचारू

Scanned with CamScanner

जी के प्रभाव में आकर यह भी समझते रहे कि प्रभुता संपन्न वर्गों को हिंसा और शक्ति प्रयोग के बजाय सुधार और नैतिक प्रलोभनों के माध्यम से अपने संपत्ति और अधिकारों से अलग करने की कोशिश करनी चाहिए। इसके बहुत-से उदाहरण उनकी कथा-रचनाओं में देखे जा सकते हैं। लेकिन इसके साथ वे गांधी जी की ट्रस्टीशिप सम्बन्धी धारणा के कभी कायल नहीं हुए। प्रेमचंद का मत था कि सामाजिक न्याय और समानता के लिए एक वर्गहीन समाज की स्थापना जरूरी है। इसलिए वह गांधी जी की धारणा के विपरीत पूंजीवादी समाज की तुलना में समाजवादी व्यवस्था का श्रेयस्कर मानते थे।''[6]

कौन नहीं जानता है कि भारत में गरीबों की संख्या सबसे अधिक है, पर आज उनके प्रतिनिधि करोड़पति हैं। यानी भारत जैसे गरीब देश की संसद में करोड़पतियों की संख्या ३५० से अधिक है। यह आकड़ा विगत १५ वें लोकसभा चुनाव के बाद आया है। प्रेमचंद ने इसके सम्बन्ध में बहुत पहले ही कहा था कि यह आश्चर्य है। सोशलिज्म के सिवा मजदूरों का कोई दूसरा आदर्श नहीं हो सकता है। उन्होंने अपने लेख 'कांग्रेस और सोशलिज्म' में सच को इस तरह से देखते हुए लिखा है– 'भारत जैसे देश में जिसमें आबादी का बड़ा हिस्सा गरीबों का है। जिसमें पढ़े–अनपढ़ सब तरह के मजदूर हैं। सोशलिज्म के सिवा उनका कोई आदर्श हो ही नहीं सकता। अगर आज कांग्रेस पार्टी का रिफ्रेंडम हो तो हमारा ख्याल है कि अक्सरियत सोशलिज्म की होगी पर एक ही दो कदम पीछे कम्युनिजम भी नजर आता है ऐसी संस्था (कांग्रेस) मध्य इस खौफ से कि मुट्ठी भर समायादारों का सहयोग उसके हाथ से जाता रहेगा, अपने आदर्शों को त्याग नहीं सकता।' सभी जानते है कि वर्गीय हित को कोई जल्दी नहीं छोड़ता। जमींदार, महाजन या पूंजीपति अपने हित की रक्षा करने के लिए एक से बढ़कर एक तिकड़म गढ़ता है। इस तरह के तिकड़म को तोड़ना तभी संभव हो सकता है, जब वर्गीय अवधारणा को सभी तरह से आत्मसात किया जाय। प्रेमचंद ने हिन्दी कथा-साहित्य को इस अवधारणा से पुष्ट किया है। उदाहरण के लिए प्रेमचंद के इस लेख को प्रस्तुत किया जा सकता है, जिसका शीर्षक है– 'अंधा पूंजीवाद'। इस लेख का प्रकाशन नवम्बर १९३३ में हुआ था। जिसमें प्रेमचंद ने लिखा है– 'यह आशा करना कि पूंजीपति किसानों की बदहाली से लाभ उठाना छोड़ देंगे, कुत्ते से चमड़े की रखवाली करने की आशा करना है। इस खूंखार जानवर से अपनी रक्षा करने के लिए हमें खुद ही हथियारबंद होना पड़ेगा।' कमर रईस ने इसी लेख 'गांधीवाद से समाजवाद तक' में आगे लिखा है– ''यह तथ्य है कि १९३३ के बाद प्रेमचंद गांधीजी के विचारों से दूर तथा उनके नेतृत्व से निराश होते जा रहे थे। इस जमाने में लिखे अपने कई लेखों में उन्होंने सम्मान के साथ गांधी जी की कार्य-शैली और उनके विचारों से मतभेद प्रकट किया है। यह भी एक सच्चाई है कि जैसे-जैसे वह गांधी जी के विचारों से दूर होते जा रहे थे, वैसे-वैसे समाजवाद से निकट आते जा रहे थे। इस दौर में वह पंडित जवाहरलाल नेहरू के समाजवादी विचारों तथा उनके द्वारा गठित 'शोशलिस्ट कांग्रेस' से भी प्रभावित हुए और वैचारिक स्तर पर उसके समीप आये। वह इस वास्तविकता को समझ चुके थे कि समाज और उसकी सभी संस्थाओं का आधार उसकी अर्थ-व्यवस्था है जिसे बदले बिना समाज में किसी परिवर्तन की कल्पना नहीं की जा सकती। उनकी दृष्टि में राष्ट्रवाद, पूंजीवाद की देन थी और इसे वह मनुष्य जाति की स्वतंत्रता और विकास के मार्ग में बाधक समझते थे।''[7]

यह सच है कि जब तक संपत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार रहेगा तब तक मानव विकास की धारा सुचारू

Scanned with CamScanner

ढंग से आगे नहीं बढ़ सकती है। पूरी दुनिया में अत्याचार, हिंसा और अन्याय को मिटाने के लिए 'संपत्ति' से व्यक्तिगत अधिकार को दूर करना ही होगा। यदि ऐसा संभव होता है, तो निश्चित रूप से घृणा, ईर्ष्या और अधर्मता का आधार टूटेगा। इस आधार को तोड़ने का प्रयास वही कर सकता है, जो प्रेमचंद के कथा-साहित्य की गंभीरता को समझने का प्रयास करेगा। इस विषय की ओर प्रेमचंद ने आम जन का ध्यान आकर्षित किया है। यही कारण है कि उन्होंने हिन्दी कथा-साहित्य को एक नवीन दिशा दी। इसके सम्बन्ध में नलिन विलोचन शर्मा ने लिखा है– "प्रेमचंद में हिन्दी-उपन्यास की क्षीण और लक्ष्यहीन धाराएं सम्मिलित होकर महानद बनीं और उनके जीवनकाल में ही वे अनेक मन्द-तीव्र धाराओं में विभक्त भी हो गईं। मुख्य धारा से हटकर स्वयं प्रेमचंद भी एक सर्वथा नवीन दिशा की ओर मुड़े थे। यह उनका सबसे महत्वपूर्ण मौलिक और महान प्रयास था, लेकिन उसके लिए ऐसे व्यापक अनुभव, मानवीयता और स्थापत्य-कौशल की जरूरत थी कि इसमें प्रेमचंद अकेले ही रह गये। उनके इस प्रयोग का अनुकरण उस तरह अनगिनत उपन्यासकारों ने नहीं किया। जिस तरह उनके पूर्ववर्ती उपन्यासों का किया था। 'गोदान' हिन्दी की ही नहीं, स्वयं प्रेमचंद की भी एक अकेली औपन्यासिक कृति है जिसके उच्चावच, विराट विस्तार, निर्मम, तटस्थ यथार्थता और सरलता की पराकाष्ठा तक पहुंचकर अत्यंत विशिष्ट बन गई शैली किसी एक भारतीय उपन्यास में नहीं मिलती।"[4] यही प्रेमचंद की सबसे बड़ी विशेषता है। प्रेमचंद ने न केवल साहित्य के उद्देश्य पर ध्यान दिया बल्कि उसके लक्ष्य को निर्धारित करने, साहित्य में आदर्श और यथार्थ के समन्वय को स्थापित करने, भारतीय ग्रामीण समस्याओं को प्रकट करने से लेकर नारी चरित्रों, किसान-चरित्रों, खेतमजदूरों तथा भारतीय सांस्कृतिक चेतना के विविध पहलुओं को कथा साहित्य में स्थान दिया। इस तरह का सफल प्रयास प्रेमचंद से पहले प्रायः प्रायः नहीं ही दिखता है। यदि कहीं-कहीं उसका आभास भी मिलता है, तो वह काफी क्षीण अवस्था में विराजमान है। सिर्फ विषय के संदर्भ में ही नहीं बल्कि उन्होंने भाषा के सम्बन्ध में भी एक ओज को हासिल किया। उन्हें जीवन की सच्चाई पता थी। जैसा कि उन्होंने लिखा है– 'मेरा जीवन सपाट, समतल मैदान है; जिसमें गड्ढे तो कहीं-कहीं है; पर टीलों, पर्वतों, घने जंगलों, गहरी घाटियों और खंडहरों का स्थान नहीं है।' जिस प्रेमचंद के जीवन में कहीं-कहीं गड्ढे थे, उस प्रेमचंद का जन्म ३१ जुलाई १८८० को बनारस से छह किलोमीटर की दूरी लम्ही गांव में हुआ। उनका परिवार किसानी परिवार था। उस वक्त किसानों की स्थिति अच्छी नहीं थी। १८५७ के महाविद्रोह में भारतीय किसानों ने जो भूमिका अदा की, उससे ब्रितानी शासन अच्छी तरह परिचित हो गया था। उस शासन को लगा था कि भारत के किसानों को और अधिक समय तक दबाकर नहीं रखा जा सकता है। उस महाजन-प्रतिरोध के ठीक २३ साल बाद किसानों के सबसे हितैषी प्रेमचंद का जन्म मुंशी अजायब लाल के घर हुआ। प्रेमचंद के परिवार द्वारा किसानी छोड़कर नौकरी करने की ओर बढ़ने के सम्बन्ध में राम विलास शर्मा ने 'प्रेमचंद का जीवन' शीर्षक लेख में जो लिखा है। उसे यहां प्रस्तुत किया जा रहा है– " ... बहुत से गरीब किसानों की तरह उनके पिता का गुजारा किसानी से न हुआ और उन्होंने नौकरी कर ली। जब प्रेमचंद का जन्म हुआ, तब इनके पिता को बीस रुपए तनखाह मिलती थी। जब वे सात साल के थे, तभी उनकी माता का स्वर्गवास हो गया। जब पंद्रह साल के हुए तब उनकी शादी कर दी गई और सोलह साल के होने पर उनके पिता का भी देहांत हो गया। जैसा कि लोग कहते हैं; लड़को की यह उम्र खेलने-खाने की होती है लेकिन प्रेमचंद को तभी से घर संभालने

Scanned with CamScanner

की चिंता करनी पड़ी। तब वह नवें दर्जे में पढ़ते थे और उनकी गृहस्थी में दो सौतेले भाई, सौतेली मां और खुद उनकी स्त्री थीं। क्रिया-कर्मों में साधारण आदमी को किस तरह ठगा जाता है, उसका कड़वा अनुभव प्रेमचंद को लड़कापन ही में हो गया।''[९] उस वक्त प्रेमचंद के परिवार की स्थिति क्या थी, इस बारे में हंसराज रहबर ने उनके बचपन के सम्बन्ध में 'प्रेमचंद जीवन कला और कृतित्व' नामक पुस्तक में इस तरह लिखा है–'' उस जमाने में क्लर्क को 'मुन्शी' कहते थे। लगातार मुन्शीगिरी करते रहने से 'मुन्शी' खान-दानी उपाधि बन जाता था। मुन्शी अजायबलाल प्रारंभ में पंद्रह-बीस रुपये मासिक वेतन पाते थे, चालीस रुपये तक पहुँचते-पहुँचते उनका देहांत हो गया। इस अल्प वेतन के अतिरिक्त उनके पास थोड़ी-सी पैतृक भूमि भी थी; लेकिन उसकी आमदनी बहुत-ही मामूली थी। इसलिए बुजुर्गों को मुन्शीगिरी अख्तयार करनी पड़ी थी। मुलाजिमत के बावजूद मध्यवर्ग के साधारण लोगों से उनकी हालत अच्छी न थी। हाँ, सिर्फ जमीन की आमदनी पर गुजारा करने वाले किसानों से कुछ बेहतर थी। इसलिए धनपत राय और उनके पिता किसान नहीं थे, लेकिन किसानों से दूर भी नहीं थे। वे किसानों के दु:ख-दर्द, कठिनाइयों, विपत्तियों और छोटी-छोटी अभिलाषाओं, से भली-भांति परिचित थे, बल्कि यह सफेद-पोश वर्ग दिखावे और रस्मो-रिवाज का, किसानों से कुछ अधिक पाबंद होता है। इसी अनुपात से उसकी कठिनाइयां और दु:ख-दर्द भी अधिक होते हैं और अतृप्त अभिलाषायें, दरिद्रता के कीचड़ में कुलबुलाती रहती हैं।''[१०]

राम विलास शर्मा तथा हंसराज रहबर ने प्रेमचंद के पारिवारिक स्थिति के अलग-अलग चित्र खींचे हैं। उन दोनों चित्रों में भिन्नता रहने के बावजूद दोनों का फलक-एक है। उस वक्त किसानों को अपनी किसानी से जीवन चलाना कठिन हो गया था, आज भी खेती से किसी प्रांतिक या मध्यवर्गीय किसानों का जीवन नहीं चल सकता है। कहने के कुछ भी कहा जाय सच्चाई यही है कि प्रेमचंद को जीवन भर भारी कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। दु:खों के बीच उनका जीवन लागातार बढ़ता गया। घर-परिवार पढ़ाई-लिखाई, नौकरी-चाकरी शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र रहा हो, जहां प्रेमचंद को पूरी तरह आराम मिला हो। कमर रईस ने इस सच को 'यात्रा के सोपान' में इस तरह उभारा है–''बचपन में ही उन्हें अपने आस-पास के जीवन और परिवेश को देखने-समझने का अवसर मिला। इसका कारण यह था कि उनके पिता का तबादला आस-पास के छोटे-छोटे देहाती कारखानों में होता रहता था। वे भी साथ जाते। एक ओर खेतों की हरियाली, दूसरी ओर गांव के किसानों की गरीबी के दृश्य खुली आंखों से देखते। बाल्यकाल के अनगिनत अनुभव एक पर्यवेक्षण बाद में उनके सुंदर कहानियों में ढल गये।''[११]

प्रेमचंद के पिता डाकखाने में काम करते थे। उनकी कहानियों में शायद डाकखाने का वातावरण और कर्मचारियों की झांकी मिलती है। डाकखाने के एक हरकारा कजाकी से उनकी आत्मीयता काफी बढ़ गयी। इस अनुभव को उन्होंने कई जगहों पर प्रस्तुत किया है। 'कजाकी' नामक उसकी चर्चा भी की है। कजाकी उनको लेकर मैदान में लेकर निकल जाता। कई तरह की कहानियां सुनाता। विरहा गाता। उस कजाकी को चोरी, डाका, मार-पीट, भूत-प्रेत के सैकड़ों किस्से याद थे। वह इस तरह से किस्से सुनाता कि प्रेमचंद आश्चर्य में डूब जाते। उन्होंने स्वयं लिखा है– 'मेरी बाल-स्मृतियों में कजाकी एक न मिटने वाला व्यक्ति है। आज चालीस साल गुजर गये, लेकिन कजाकी मूर्ति अभी तक आंखों के सामने नाच रही है। ... कजाकी जाति का पासी था। बड़ा हंसमुख, बड़ा ही साहसी, बड़ा ही जिंदादिल। ...

Scanned with CamScanner

रोजाना डाक का थैला लेकर आता ... जब वह दौड़ता तो उसकी बल्लभी झुंझुनी बनती।' कहा ही जाता है कि बचपन में हवाई किला काफी बनाया जाता है। बचपन का यह एक विशेष गुण है। इस गुण से आकर्षण बढ़ता है। हर्ष और उल्लास के बिना जीवन कैसे आगे बढ़ेगा। उस कजाकी की बल्लभी झुंझुनी ने प्रेमचंद के जीवन को किस तरह हर्षित किया, उसका नमूना प्रस्तुत है– 'हर्षातिरेक में मैं भी दौड़ पड़ता और एक क्षण में कजाकी का कंधा मेरा सिंहासन बन जाता। वह स्थान मेरी अभिलाषाओं का स्वर्ग था। स्वर्ग के वासियों को भी शायद वह आनंद न मिलता होगा। जो मुझे कजाकी के विशाल कंधे पर मिलता था। संसार मेरी आंखों में तुच्छ हो जाता और जब कजाकी मुझे कंधे पर लिए हुए दौड़ने लगता; तब तो ऐसा मालूम होता मानों में हवा के घोड़े पर उड़ा जा रहा हूँ।' इस तरह उनका बचपन आंनदमय था, लेकिन अभाव से खाली नहीं था। मध्यम वर्ग हमेशा किसी न किसी अभाव में फंसा रहता है। उसे तंगी में अपना जीवन निर्वाह करना पड़ता है। हर विचारवान व्यक्ति यही कामना करता कि उसकी संतान नेक बने, चरित्रवान बने। विचारवान व्यक्ति की यह इच्छा उत्तर आधुनिकतावाद के युग में किस तरह पूरी होगी या नहीं, कहना मुश्किल है। लेकिन आज भी संघर्षशील परिवार यही चाहता कि उसकी संतान नीयती पर चले। नेक-नीयती ही जिन्दगी की भयानक से भयानक कठिनाइयों और विपत्तियों से मुकाबला करने की ताकत देती है। इसी गुण के बल पर मध्यम वर्ग अपनी अभिलाषाओं को आगे बढ़ाने का प्रयास करता है। यह प्रयास अपने-आप में अद्वितीय होता है, इसे कोई असाधारण व्यक्ति ही पूरा कर सकता है। अभाव कल्पनाशील बना देता है। अभाव जीवन को किस ओर आगे बढ़ाता है, इस ओर यदि ध्यान जाय, तो हंसराज रहबर की इन बातों की याद इस तरह आ जाती है– ''यथार्थ वस्तु का अभाव मनुष्य को कल्पनाशील बना देता है। जीवन में जो पदार्थ प्राप्त नहीं होते, मनुष्य उन्हें कल्पना में ढूंढता है, और हवाई किले बनाता है। नन्हा धनपत राय जिन महलों के स्वप्न देखा करता था, वे उसे सारी उम्र नसीब नहीं हुए, इस कल्पना-शीलता ने प्रेमचंद को नये और सुन्दर जीवन का निर्माता बना दिया। बड़े होकर उन्होंने अपनी कहानियों में ये हवाई किले जगह-जगह बनाये; जिन्हें धरती पर उतारने के लिए उन्होंने संघर्ष किया है।''[१२]

उनका यह संघर्ष आजीवन चलता है। इस संघर्ष के विविध आयाम का दर्शन किया जा सकता है। लेकिन जीवन के अंतिम क्षण में उनका यह संघर्ष काफी मार्मिक बन गया। प्रेमचंद के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उनका जीवन अभाओं से पूरी तरह लबालब था। कुछ आलोचकों ने इसे अस्वीकार किया है। पर जीवन के अंतिम क्षण पर ध्यान से वास्तविकता नजर आ सकती है। इस प्रसंग को कई विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से प्रस्तुत किया। इस सम्बन्ध में कमर रईस ने जो लिखा है, उसे यहां प्रस्तुत किया जा रहा है– ''अक्टूबर १९३६ के पहले सप्ताह में उनकी बीमारी ने गंभीर रूप ले लिया। अपने निकट के मित्रों दयानारायन निगम और जैनेन्द्र कुमार को बुलवाया। उनसे बातें की। जैनेन्द्र कुमार ने लिखा है कि जीवन की अंतिम घड़ियों में उन्हें जितनी चिंता पत्नी और बच्चों की थी, उतनी ही 'हंस' और साहित्य के भविष्य की थी। अंततः वह घड़ी आ गयी जब अपने वतन, अपने देश की जनता, मानवता और साहित्य से समर्पित प्रेम करने वाले इस रचनाकार की वाणी लेखनी सदा के लिए मौन हो गयी। दया नारायन निगम लिखते हैं: 'सात अक्टूबर की रात बेचैनी से कटी। सुबह हुई। मुंह धोने को मंजन और पानी मांगा, लेकिन लड़का मुंह धुलाने आया तो हालत गैर हो चुकी थी और वह हिल भी नहीं सकते

Scanned with CamScanner

थे। घबराकर बीवी चिल्ला उठीं– 'क्या आप मुंह भी नहीं धोयेंगे?' वह मुश्किल से कुछ इशारा कर सके। चंद हिचकियां लीं और हेमशा के लिए सो गये। डाक्टर आया। नब्ज देखी, मगर रूह जिस्म से आलमें बाला को परबाज कर चुकी थी।' ... आठ अक्टूबर को उनकी लेखनी सदैव के लिए मौन हो गयी। इस प्रकार एक ऐसे साहित्यकार की जीवन-यात्रा समाप्त हुई जिसकी आवाज भारत के आवाम की आवाज थी।''[१३]

प्रेमचंद की कीर्ति चारों ओर फैल गयी। मनुष्य के जीवन की सबसे बड़ी लालसा कहानी बनकर हर एक जबान पर छाने की होती है। यदि इस दृष्टि से देखा जाये तो प्रेमचंद का जीवन और उनकी कीर्ति उस समय भी छा गयी थी। उनकी कहानियों का अनुवाद न केवल गुजराती, मराठी और बंगाली भाषाओं में होती थी बल्कि अंग्रेजी और जापानी सहित कई विदेशी भाषाओं में उनकी कई कहानियां अनूदित हुई। उन कहानियों पर चर्चाएं भी होती थीं। 'प्रेमाश्रम' उपन्यास का रूसी भाषा में अनुवाद हुआ। प्रेमचंद को यह विश्वास था कि प्रयत्न से कीर्ति नहीं मिलती। आपा-धापी से अर्जित कीर्ति से कोई लाभ भी नहीं होता। अगर सच्चे दिल से समाज की सेवा की जाये, तो कीर्ति मिलेगी। सेवा में एक तरह का अद्‌भुद आनंद है। एक सच्चे लेखक के लिए उससे बड़ा पुरस्कार और क्या हो सकता है। इस बारे में प्रेमचंद द्वारा रचित कहानी लेखक की ओर नजर जाना लाजमी है; जिसमें लेखक ने अपनी पत्नी से कहा है– 'अब तुम्हें कैसे समझाऊँ। प्रत्येक प्राणी के मन में आदर और सम्मान की एक क्षुधा होती है? तुम पूछोगी यह क्षुधा क्यों होती है। इसलिए कि यह हमारे आत्म-विकास की एक मंजिल है।' यही क्षुधा एक लेखक को कर्म और त्याग की राह पर चलने की प्रेरणा देने के साथ-साथ ऐतिहासिक सत्य को आगे बढ़ाने का साहस देता है। ऐतिहासिक सत्य को समझना तथा उससे व्यापक पाठक समुदाय को परिचित कराने की क्षमता जब तक एक रचना हासिल नहीं कर पाती, तब तक उस रचना को ऐतिहासिक मूल्यांकन करने की क्षमता हासिल नहीं हो पाती। इसके लिए उस रचना को एक हद तक अपना दार्शनिक आधार भी चुनना पड़ता है, जिसे युगीन चेतना की जानकारी नहीं होती या जिस रचना में युग की वाणी स्पष्ट नहीं होती उसे आम जनता से अलग-थलग होने से कोई रोक भी नहीं सकता। वैसे इस प्रचार की दुनिया में एक रचना को इसके जरिये प्रचारित किया जा सकता है। लेकिन उस रचना का पाठक कर्म नहीं खड़ा हो पाता है। प्रेमचंद को शायद यह पता था कि पाठकवर्ग को कैसे खड़ा किया जाता है। जैसे जैसे उनके कथा लेखन में निखार आता गया वैसे-वैसे उनके पाठक-वर्ग की संख्या बढ़ती चली गयी। कई आलोचकों ने प्रेमचंद के जीवन को विकास का आंदोलन कहा है। उन आलोचकों में हंसराज रहबर का नाम सर्वोपरि है, जिन्होंने लिखा है– ''प्रेमचंद ने निश्चित रूप से जीवन के विकास मे वृद्धि की है। वास्तव में उनका जीवन ही विकास का आन्दोलन था। जैसे-जैसे प्रगतिशील विचारधारा अपनी परम्पराओं पर स्थित रहकर आगे बढ़ रही है और फैल रही है, प्रेमचंद की कीर्ति उज्ज्वल होती और फैलती रही है।''[१४]

बड़े लेखकों की तरह प्रेमचंद ने भी अपने युग ओर ऐतिहासिक-सामाजिक परिस्थितियों का विश्लेषण किया है। उनकी रचनाओं ने स्वाधीनता संग्राम को विकास की राह पर अग्रसर किया, हिन्दी की साहित्यिक परम्परा के लिए ठोस जमीन तैयार की। उन्होंने शोषित-वंचित जनता के अधिकारों को स्थापित करने के लिए हमेशा संघर्ष किया, उस संघर्ष का अवलोकन उनकी रचनाओं में किया जा सकता है, न केवल अवलोकन बल्कि उस संघर्ष से प्रेरणा लेकर वर्तमान समय की जो बड़ी चुनौती है,

Scanned with CamScanner

उसका भी डटकर सामना किया जा सकता है। उन्होंने आजीवन अन्याय, रूढ़िवाद और अंधविश्वास के विरुद्ध संघर्षशील लड़ाई को जारी रखा। हंसराज रहबर ने उनकी इस संघर्ष के सम्बन्ध में लिखा है– "प्रेमचंद सीधे-सच्चे और निरीह जनसाधारण के धार्मिक विश्वास तथा रूढ़िगत विचारों का भी आदर करते हैं क्योंकि इनसे इन्हें घोर दरिद्रता और विषमता में भी जीवित रहने का सहारा मिलता है।"[3]

सवाल यह नहीं है कि धार्मिक विश्वास को कौन किस रूप में आदर करता है? सवाल यह है कि आर्थिक विषमता के बीच अपनी जिन्दगी को कैसे बचाया जा सकता है तथा संघर्ष को किस रूप में आगे बढ़ाया जा सकता? इसके लिए आवश्यक है– शिक्षित होना। शिक्षा के बिना जागरूकता नहीं आती और न कहीं से रौशनी की एक किरण आती है। ऐसी स्थिति में अंधेरे से लड़ना एक कठिन काम है। प्रेमचंद को इस संसार के सबसे बड़े महारथी पर बिल्कुल भरोसा नहीं था। उनके विचारों की दृढ़ता एक उदाहरण है। इस प्रसंग में राम विलास शर्मा ने लिखा है– "प्रेमचंद के विचारों की दृढ़ता चट्टान-जैसी थी। उनके कई मित्रों ने लिखा है कि उन्हें ईश्वर में विश्वास नहीं था। मृत्यु शय्या पर पड़े हुए प्रेमचंद से लोग ईश्वर का स्मरण करने के लिए कहते थे। उन्होंने उस अंतिम रात्रि को जैनेंद्र से कहा था– 'जैनेंद्र, लोग ऐसे समय याद किया करते हैं ईश्वर, मुझे भी याद दिलाई जाती है। पर अभी तक मुझे ईश्वर को कष्ट देने की जरूरत नहीं मालूम हुई है।' ... यह प्रेमचंद का मनुष्यत्व था जो मृत्यु को देखकर मुस्करा रहा था।"[4]

सही अर्थों में मनुष्यत्व मृत्यु को देखकर मुस्करा सकता है। कथा लेखन में इसी मनुष्यत्व की स्थापना करनी होती है। कथा साहित्य की व्याख्या विभिन्न तरह से की जाती है, लेकिन प्रेमचंद ने कथा साहित्य पर गंभीरता से अपनी लेखनी चलायी है। उन्होंने विभिन्न समय पर कहानी, कहानी कला, उपन्यास और उपन्यास विषय के सम्बन्ध में गंभीरता से रोशनी डाली है। कहानी कहने का सिलसिला प्राचीन काल से चला आ रहा है। छोटी-छोटी कहानियों के जरिये समाज में अनैतिकता के विरुद्ध नैतिकता, झूठ के विरुद्ध सत्य स्थापित करने के लिए काफी प्रयास किया गया। लोगों को लगता था कि यदि समाज में नैतिक तत्वों की स्थापना करनी है, तो कहानी ही सबसे सशक्त माध्यम है। इस माध्यम के बिना कोई दूसरा रास्ता नहीं है, जिसे लेकर आगे बढ़ा जा सकता है। सिर्फ मनोरंजन प्राप्त करना उसका मकसद नहीं था। इस बारे में प्रेमचंद ने लिखा है– "गल्प, आख्यायिका या छोटी कहानी लिखने की प्रथा प्राचीन-काल से चली आती है। धर्म-ग्रंथों में जो दृष्टांत भरे पड़े है, वे छोटी कहानियां ही है; पर कितनी उच्च कोटि की महाभारत, उपनिषद, बुद्ध-जातक, बाइबिल, सभी सद्ग्रंथों में जन-शिक्षा का यही साधन उपयुक्त समझा गया है।"[5] उन्होंने सवाल उठाते हुए आगे लिखा है– ज्ञान और तत्व की बातें इतनी सरल रीति से और क्योंकर समझाई जाती? किंतु प्राचीन ऋषि इन दृष्टांतों द्वारा केवल आध्यात्मिक और नैतिक तत्वों का निरूपण करते थे। उनका अभिप्राय केवल मनोरंजन न होता था। ... कितनी विशुद्ध कल्पना, कितना मौलिक निरूपण, कितनी ओजस्विनी रचना शैली है कि उसे देखकर वर्तमान साहित्यिक की बुद्धि चकरा जाती है। आजकल आख्यायिका का अर्थ बहुत व्यापक हो गया है। उसमें प्रेम की कहानियां, जासूसी किस्से, भ्रमण-वृत्तांत, अद्भुत घटना, विज्ञान की बातें, यहां तक कि मित्रों की पत्र-शत्र भी शामिल कर दी जाती है।"[6]

प्रेमचंद ने इसके लिए एक मानदंड तैयार किया है। उन्होंने साहित्य की परिभाषा दी है तथा उसके गुण पर प्रकाश डाला है। सभी जानते हैं कि कथा साहित्य का ही एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। जैसा कि

Scanned with CamScanner

प्रेमचंद ने साहित्य के सम्बन्ध में लिखा है– 'मनुष्य ने जगत में जो कुछ सत्य और सुंदर पाया है और पा रहा है, उसी को साहित्य कहते हैं और कहानी भी साहित्य का एक भाग हैं।' साहित्य काल्पनिक वस्तु होते हुए भी आनंद प्रदान करता है। यही कारण है कि वह सत्य है। जिसे पढ़कर आत्मग्लानि हो, वह आनंद नहीं दे सकता और जो आनंद प्रदान नहीं करता वह सत्य भी नहीं है। जीवन में इन्हीं दो चीजों की आवश्यकता है– सत्य और आनंद। मनुष्य जाति के लिए मानव ही सबसे बड़ी पहेली है। उसे समझना कठिन है। मानव को सही अर्थो में समझना ही मानव-संस्कृति का विकास है। प्रेमचंद ने कहानी-कला के सम्बन्ध में लिखा है– ''अध्यात्म और दर्शन की भांति साहित्य भी इसी सत्य की खोज में लगा हुआ है,– अंतर इतना ही है कि वह इस उद्योग में रस का मिश्रण करके उसे आनंदप्रद बना देता है। इसलिए अध्यात्म और दर्शन केवल ज्ञानियों के लिए है, साहित्य मनुष्य मात्र के लिए।''[१९]

इसी समझदारी के साथ उन्होंने कथा लेखक का सूत्रपात किया था। कहानी का आधार घटना नहीं है, उसका आधार अनुभूति ही है। रोचक दृश्य देखकर कहानी नहीं लिखी जा सकती; उसका उद्देश्य स्थूल दृश्य भी नहीं है। स्थूल सौंदर्य को उपस्थित करना कहानी का मकसद नहीं होता है। यह सच है कि ठोस मकसद के बिना कहानी नहीं लिखी जा सकती। कहानी किसी न किसी प्रेरणा का स्रोत होती है, जिसमें एक झलक होती है– सुन्दरता की। यही झलक पाठकों को स्पर्श करता है तथा उसे सत्य और आनंद की ओर उन्मुख करता है। प्रेमचंद ने कहानी की विकास गाथा पर भी विचार व्यक्त किया है। उनके अनुसार कहानियों का जन्म उसी समय हो गया, जब आदमी ने बोलना सीख लिया। लेकिन कथा-साहित्य का ज्ञान 'कथा-साहित-सागर', इसप की कहानियां, और 'अलिफलैला' इत्यादि पुस्तकों से हुआ है। कथा-वैचित्र्य ही उन पुस्तकों की महत्ता रही है। उन्होंने यह भी लिखा है– ''...वर्तमान आख्यायिका या उपन्यास का आधार ही मनोविज्ञान है। घटनाएं और पात्र तो उसी मनोवैज्ञानिक सत्य को स्थिर करने के निमित्त ही लाए जाते हैं। उनका स्थान बिलकुल गौण है। उदाहरणतः मेरी 'सुजान भगत', 'मुक्ति मार्ग', 'पंच परमेश्वर', 'शतरंज के खिलाड़ी' और 'महातीर्थ' नामक सभी कहानियों में एक न एक मनोवैज्ञानिक रहस्य को खोलने की चेष्टा की गई थी।''[२०]

प्रेमचंद ने इसी लेख में कहानी का मूल्यांकन करते हुए बताया है कि साहित्य में कहानी का स्थान सबसे ऊँचा हैं; प्रेमचंद के शब्दों में– ''परन्तु यदि स्वार्थ और अहंकार और ईर्ष्या की ये बाधाएं न होती, तो हमारी आत्मा के विकास को शक्ति कहां से मिलती? शक्ति तो संघर्ष में है। हमारा मन इन बाधाओं को परास्त करके अपने स्वाभाविक कर्म को प्राप्त करने की सदैव चेष्टा करता रहता है। इसी संघर्ष से साहित्य की उत्पत्ति होती है। यही साहित्य की उपयोगिता भी है। साहित्य में कहानी का स्थान इसीलिए ऊँचा है कि वह एक क्षण में ही, बिना किसी घुमाव-फिराव के, आत्मा के किसी न किसी भाव को प्रकट कर देती है। और चाहे थोड़ी मात्रा में क्यों न हो, वह हमारे परिचय का, दूसरों में अपने को देखने का, दूसरों के हर्ष या शोक को अपना बना लेने का क्षेत्र बढ़ा देती है।''[२१]

इसी तरह उन्होंने उपन्यास के सम्बन्ध में अपना विचार व्यक्त किया है जो काफी मौलिक है। उनके शब्दों में ही– हमारा ख्याल है कि क्यों न कुशल साहित्यकार कोई विचार-प्रधान रचना की इतनी सुंदरता से करे। जिसमें मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियों का संघर्ष निभता रहे? 'कला के लिए कला' का समय वह दाता है, जब देश सम्पन्न और सुखी हो।... जिधर निगाह उठती है, दुःख और दरिद्रता के भीषण दृश्य

Scanned with CamScanner

दिखाई देते हैं, विपत्ति का करुणा क्रंदन सुनाई देता है, तो कैसे संभव है कि किसी विचारशील प्राणी का हृदय न दहल उठे? हां, उपन्यासकार को इसका प्रयत्न अवश्य करना चाहिए कि उसके विचार परोक्ष रूप से व्यक्त हो, उपन्यास की स्वाभाविकता में उस विचार के समावेश से कोई विघ्न न पड़ने पाए; अन्यथा उपन्यास नीरस हो जायेगा।''[२२]

उपन्यास सुंदर हो, इसकी भी चिंता प्रेमचंद को बराबर रहती थी। उपन्यास को उच्च कोटी किस तरह बनाया जाय, इस बारे में उन्होंने बताया है– ''उपन्यास में वार्त्तालाप जितना अधिक हो और लेखक की कलम से जितना ही कम लिखा जाय, उतना ही उपन्यास सुंदर होगा। वार्तालाप केवल रस्मी नहीं होना चाहिए। प्रत्येक वाक्य को– जो किसी चरित्र के मुंह से निकले– उसके मनोभावों और चरित्र पर कुछ न कुछ प्रकाश डालना चाहिए। बातचीत का पूर्ण रूप से स्वाभाविक परिस्थितियों के अनुकूल, सरल, और सूक्ष्म होना जरुरी है। हमारे उपन्यासों में अक्सर बातचीत भी उसी शैली में कराई जाती है, मानो लेखक खुद लिख रहा हो। शिक्षित-समाज की भाषा तो सर्वत्र एक है, हां भिन्न-भिन्न जातियों की जबान पर उनका रूप कुछ न कुछ बदल जाता है।''[२३]

प्रेमचंद से पहले हिन्दी कथा-साहित्य की परम्परा निश्चित तौर पर कायम हो गयी थी। उस परम्परा को आगे बढ़ाने में प्रेमचंद ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। कथा-साहित्य को एक वास्तविक धरातल प्रदान करते हुए उन्होंने कथा-साहित्य के भाव, चरित्र, परिवेश यहां तक कि भाषा की सहजता-सरलता को बरकरार रखने पर जोर देने के साथ-साथ सामाजिक-ऐतिहासिक सच्चाई से परिचित करने के लिए एक महान रास्ता का अनुवेषण किया। उस रास्ते पर हिन्दी कथा-साहित्य की जय-यात्रा जारी रहेगी, जो अपनी विविधता के लिए ख्याति अर्जित करेगी तथा मानव संस्कृति को विकसित करने के मकसद से नये-नये रहस्य को उद्‌घाटित करेगी। प्रेमचंद की यह लेखन-यात्रा हिंदी साहित्य के लिए एक अमुल्य संपदा है, जिसके रक्षार्थ कथा-साहित्य के अनुरागी दृढ़ हैं।

आलोचना में उत्कर्ष का महत्व है। यदि आलोचना घटिया हो गया, तो सृजन बिल्कुल बेकार हो जाता। इसके बेकार होने से समाज में मूल्य स्थापित नहीं हो पाते। इस स्थापन के लिए आलोचकों को भयानक संघर्ष की राह पर चलना पड़ता है। उसमें भी जब वित्तीय पूंजी का नंगा नाच चारों ओर चलता हो। आज इस पूंजी के जरिये बाजार में वर्चस्ववादी शक्तियों ने न केवल अपना पूरा माल पाट दिया बल्कि प्रायः हर घर की पसंद को भी बदल दिया। ऐसी स्थिति में बाजारवाद की चुनौतियों का सामना करना कठिन हो गया है। लेकिन पूरे धैर्य के साथ आगे बढ़ना होगा तथा उपभोक्तावाद के विरुद्ध संघर्ष को नयी दिशा देने के लिए न केवल साम्राज्वादियों की नयी रणनीति से परिचित होना होगा बल्कि साम्राज्यवादी वैश्वीकरण के विरुद्ध जन आंदोलन को प्रसारित करने के लिए मजदूरवर्ग सहित मेहनतकशों की समस्याओं पर गंभीरता से विचार करना होगा, जो आज समाज में नहीं हो पा रहा है।

हिन्दी आलोचना के अन्तर्गत भी संघर्षशील लोगों की समस्याओं का जिक्र नहीं किया जाता; जिस आलोचना की बुनियाद किसानों के संघर्ष से आरंभ हुई थी, आज उन्हीं किसानों के प्रति हिन्दी आलोचना के उस्ताद बेखबर हैं। कृषि जगत में समस्याएं क्यों बढ़ रही हैं? किसानों की समस्याओं के सम्बन्ध में प्रेमचंद ने 'कर्मभूमि' में सबसे अधिक जोर दिया, इसलिए उन्होंने इस उपन्यास में जमीन

Scanned with CamScanner

की समस्या, लगान घटाने और खेतिहर मजदूरों-गरीब किसानों की जमीन समस्या को केन्द्रित किया है। पराधीन भारत में शासकवर्ग किस तरह गरीबों को धक्का दे रहा था, जिसके विरुद्ध गरीब एकजुट हो रहे थे।

उनकी एकजुटता धीरे-धीरे एक जगह रंग लायी। इस 'कर्मभूमि' उपन्यास पर बड़ी गंभीरता से अपना विचार व्यक्त करते हुए राम विलास शर्मा ने बिल्कुल सही लिखा है– "कर्मभूमि हिन्दुस्तान के स्वाधीनता-आंदोलन की गहराई और प्रसार का उपन्यास है। यह आंदोलन एक जबरदस्त तूफान की तरह तमाम जनता को अपने अंदर समेट लेता है। विद्यार्थी, किसान, अछूत, स्त्रियां, शिक्षक, व्यापारी, मजदूर-सभी इसके प्रवाह में आगे चलते हैं। 'प्रेमाश्रम' के किसान अब अकेले नहीं हैं। उनकी लड़ाई के साथ तमाम जनता अपनी आजादी की लड़ाई में आगे बढ़ रही है। आंदोलन से जनता से नए नेता पैदा होते हैं। लाठी-चार्ज होते हैं, गोलियां चलती हैं, लेकिन लोग अपनी सफें मजबूत करते हुए आगे बढ़ते हैं।"[२४] इस 'कर्मभूमि' सम्बन्ध में आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने लिखा है– "कर्मभूमि उपन्यास सन् १९३२-३३ के लगभग लिखा गया। इसके प्रेमचंद फिर सामाजिक व राजनीतिक जीवन को अपना विषय बनाते हैं। इससे न तो 'रंगभूमि' जैसी आदर्शवादिता है और न 'गबन' जैसी विषय की एकाग्रता और समाहार है। परन्तु यह एक बड़ी कृति है जो सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं को नए रूप में रखती है। 'कर्मभूमि' में सामान्य जीवन की धारा व वास्तविकता अधिक है, गांधीवादी प्रभाव कम है।"[२५]

राम विलास शर्मा ने स्वीकार किया कि कर्मभूमि में प्रेमचंद का यथार्थवाद और पुष्ट हुआ है। जिसे नन्ददुलारे वाजपेयी ने गांधीवाद का प्रभाव कम कहा है, उसी को राम विलास शर्मा ने प्रेमचंद की मनोवैज्ञानिक सूझ-बूझ कहा है। इस संदर्भ में राम विलास शर्मा ने लिखा है– "कर्मभूमि में प्रेमचंद का यथार्थवाद और बुलंदी पर पहुँचा है। अमरकांत के चरित्र में उन्होंने अपनी मनोवैज्ञानिक सूझ-बूझ का अद्भुत परिचय दिया है। मुन्नी उनकी वीर नारियों में शिरमौर है। मुन्नी और अन्य नारी-पात्रों के चरित्रण में आमतौर से प्रेमचंद ने एक महान कलाकार की सहृदयता का परिचय दिया है। सुखदा और नैना के त्याग और सच्ची देश-भक्ति के सामने अमरकांत और समरकांत खुद बालूम होते हैं। सलोनी और उसके गांववाले पाठक की सारी करुणा, सारी सहानुभूति अपनी तरफ खींच लेते हैं। वह सोचता रह जाता है– इनकी तकलीफों का कैसे अंत हो? कौन-सा रास्ता है, जिससे आतंक से इनकी रक्षा होगी? प्रेमचंद उसे यह सोचने पर विवश करते हैं,यह उनकी जबर्दस्त सफलता है।"[२६]

पर कथा-समीक्षक नलिन विलोचन शर्मा ने पूर्ववर्ती तथा परवर्ती कथापरम्परा का जिक्र करते हुए 'कर्मभूमि' के सम्बन्ध में कहा– "कर्मभूमि' की परिधि अपेक्षाकृत छोटी है और उसमें दम फिर एक बार मध्यवर्ग की प्रधानता पाते हैं, जैसे 'गोदान' के बाद के और प्रेमचन्द के अंतिम अपूर्ण उपन्यास 'मंगलसूत्र' में।"[२७] राम विलास शर्मा ने प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम' उपन्यास के बारे में बिल्कुल ठीक कहा– "प्रेमाश्रम" किसान-जीवन का महाकाव्य है। उसमें उस जीवन का एक पहलू नहीं दिखाया गया, वह एक विशाल नदी की तरह है जिसमें मूल धारा के साथ आसपास के नालों का पानी, जड़ से उखड़े हुए पुराने खोखले पड़े और खेतों का घासपात भी बहता हुआ दिखाई देता है।"[२८]

इसी तरह राम विलास शर्मा ने 'गोदान' के सम्बन्ध में अपना मंतव्य दिया। इस मंतव्य को उद्धृत

Scanned with CamScanner

करना आवश्यक है– ''होरी अकेला है तो इसकी जिम्मेदारी ऐतिहासिक परिस्थितियों पर है। उस समय तक किसान को कर्ज के बोझ से हल्का करने की समस्या किसान-आंदोलन का मुख्य अंग न बन पाई थी। स्वाधीनता आंदोलन का अर्थ अंग्रेज के झंडे को हिंदुस्तान के बाहर करना समझा जाता था। प्रेमचंद चाहते थे, अंग्रेज का झंडा बाहर जाए; लेकिन जिस विलायती मशीन के नीचे किसान पिस रहा है, वह मशीन भी बाहर जाए। इसलिए 'प्रेमाश्रम' से लेकर 'गोदान' तक उनकी कोशिश यही रही थी कि इस मशीन के तौर-तरीकों को जनता के सामने जाहिर करें जिससे की जड़ भी हिन्दुस्तान से उखाड़ फेंके।''[२९] इसी लेख में उन्होंने आगे लिखा– ''और होरी के लड़के गोबर में 'प्रेमाश्रम' के बलराज की-सी दृढ़ता न हो तब भी वह नए जमाने की रोशनी देख चुका है। चाहे गांव में खेती करे, चाहे शहर में मजदूरी, वह दूसरों का अन्याय बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं है। होरी के मरने के बाद गोबर मानो पिता के हत्यारों के लिए एक चुनौती की तरह जीवित रहता है वह गोबर जिसने– ''राजनीतिक जलसों के पीछे खड़े होकर भाषण सुने हैं और उनसे अंग-अंग में बिंधा है। उसने सुना है और समझा है कि अपना भाग्य खुद बनाना होगा; अपनी बुद्धि और साहस से इन आफतों पर विजय पाना होगा।''[३०]

भारतीय किसान अपना भाग्य अपने साहस बल से बनाता है। उसके सामने भयानक चुनौतियां होती, उन चुनौतियों का सामना करने में उन्हें हमेशा सफलता मिली है। लेकिन सफलता का स्वाद उसे नहीं मिला। जब बिदेश के झंडे को किसानों ने भारत से बाहर कर दिया। तब उनकी जैसी स्थिति थी, आज उनकी स्थिति और खतरनाक बन गयी है। पिछले १८ सालों में दो लाख से अधिक किसानों ने खुदकुशी की, लेकिन इस पर कौन चर्चा करता है। यदि कोई चर्चा करता भी है, तो उसे विशुद्ध राजनीतिक शिविर में धकेलने का प्रयास किया जाता है। एक भ्रांत और गलत नीतियों के चलते किसान-मजदूरों सहित गरीब लोगों को शिकार होना पड़ता है। इससे बचने के उपाय हैं। उस पर सोचने वालों की कमी है। यथा किसानों की स्थिति को बेहतर बनाने के लिए नीति चाहिए। नीति निर्धारकों का मकसद स्पष्ट हो, जैसाकि 'महंगाई की मार' नामक पुस्तिका में जिक्र किया गया है– ''यदि केंद्र कृषि और किसान के हालात में सुधार लाना चाहता है, तो उसे उद्योग को विकसित करने पर ध्यान देना होगा। जब तक औद्योगिक विकास नहीं होता है, तब तक किसानों और कृषि की उन्नति भी नहीं हो सकती। खाद, पम्पिंग सेट खेत में नहीं बनाये जा सकते, ये कारखाने में ही बनेंगे। इसलिए कारखाना लगाने पर जोर देना होगा। देश में जो चंद खाद के कारखाने हैं, उनकी संख्या बढ़ाने पर जिस तरह से बल देना होगा, उसी तरह खाद की गुणवत्ता बढ़ाने की कोशिश करनी होगी। यदि इस ओर पहल की जाती है, तो सस्ते दाम पर किसानों को खाद उपलब्ध हो सकता है। खेती पर लागत कम हो सकती है। फसलों का उचित दाम निर्धारित करने के संबंध में केंद्र को जिस तरह एक ठोस नीति का प्रयोग करना चाहिए, ठीक उसी तरह उसे इसका भी ख्याल रखना चाहिए कि कोई किसानों की भलमानसाहत का नाजायज फायदा न उठाये। याद रखना होगा कि कुछ दिनों पहले तक केरल में भी किसान कर्ज लेने के कारण आत्महत्या कर रहे थे। लेकिन इस समस्या को वहां की राज्य सरकार ने गंभीरता से लिया तथा किसान कर्ज राहत कमेटी का गठन किया। उस कमेटी ने इस समस्या का विश्लेषण किया तथा

Scanned with CamScanner

कारगर हस्तक्षेत्र किया, जिसका अच्छा परिणाम निकला; किसानों की खुदकुशी बंद हो सकती है, तब महाराष्ट्र, आन्ध्र, तमिलनाडु, कर्नाटक में किसानों की खुदकुशी क्यों नहीं बंद होगी ? यदि उन चार राज्यों में किसानों की खुदकुशी बंद नहीं हो पा रही है, तो सिर्फ नीति के कारण। इसलिए ठोस नीति बनाने के लिए जोरदार आंदोलन संगठित करना होगा, ताकि भारत सरकार इस तरह की नीतियों को बदले, तभी जाकर २१वीं सदी से भारत के किसान सिर उठाकर आगे बढ़ सकते हैं। किसानों को बचाने से देश की खाद्य-समस्या भी कम हो सकती है। इसके लिए नीति चाहिए। पर केन्द्र खाद्य नीति के प्रति उदासीन है।''[३१]

इस सच को समझना होगा। यह एक युग– सच है। इसके सम्बन्ध में मुक्तिबोध ने बिल्कुल सही लिखा है– ''इस युग का अकाट्य सत्य है कि जो व्यक्ति सामाजिक सांस्कृतिक सीढ़ी पर जितना ऊँचा चढ़ता और बढ़ता है व्यक्ति अपनी भूमि से अपने ही लोगों से उतना ही दूर, उतना ही अलग, उतना ही भिन्न, उतना ही अन्य, उतना ही अपरिचित, उतना ही अपरिपक्व, उतना ही अजीब और अजनबी हो जाता है।''[३२] आज का दौर ही कुछ ऐसा ही हो गया है। इस दौर से निकलने के लिए लोग काफी प्रयास कर रहे हैं। लेकिन बाहर नहीं निकल पा रहे हैं। शायद यह उपभोक्तावाद की भाया हो या मीडिया की महिमा इस बारे में यही कहना पड़ता है कि उपभोक्तावाद ने मीडिया की अंगुली पकड़कर युवा पीढ़ी के बीच अपना घर बनाया है। पर याद रखना होगा कि मीडिया उपभोक्तावाद का औजार नहीं है। पर चर्चा इस तरह से की जाती है कि उपभोक्तावाद को प्रसारित करने में मीडिया की प्रमुख भूमिका है। दरअसल मीडिया साम्राज्यवादियों के हाथों की कठपुतली है और बाजारवाद उनका वह रास्ता है, जिस रास्ते पर आगे बढ़ते हुए साम्राज्यवाद अपना झंडा चारों तरफ लहरा रहा है। साथ ही याद रखना होगा कि उसके वर्चस्व के विरुद्ध आम लोगों ने बार-बार अपनी एकजुटता कायम की है। उपभोक्तावाद के जरिये समाज में व्यक्ति-व्यक्ति के बीच दरार पैदा किया जाता है। पूंजी का आक्रामक रूप आंखों के सामने है।

इस रूप का मुंहतोड़ जबाब देने के लिए जनमत तैयार करना ही एक मात्र रास्ता है। यह जनमत अब टेलीविजन के जरिये तैयार करना शायद संभव नहीं हो सकता है, क्योंकि टेलीविजन और अखबार सहित अन्य संचार माध्यमों के जरिये सत्य को स्थापित करने की संभावना धीरे-धीरे खत्म होती जा रही है। अब खुले आम खबरें बिक रही हैं। जिसके पास पैसे हैं, उसकी खबरें हैं। इस बारे में प्रभाष जोशी का संघर्ष एक यादगार है, जिन्होंने इस तरह के 'पेड न्यूज' के विरुद्ध संघर्ष शुरू किया। इस संघर्ष के बारे में एस विश्वनाथन ने 'द हिन्दू' के १५ मार्च २०१० के अंक में अपने लेख 'Paid News : introspection time for the media' लिखा– "Special mention must be made of the early efforts of veteran journalist Prabash Joshi, who began compaigning Vigorously against the menace as soon as he learned about it during the Lok Sabha elections. Apart from writing articles in newspapers he addressed scores of meetings in nothern states before his death on November 5, 2009"[३३]

और जब खबर की यह हाल है, तब बाजारवाद से भला कौन-सी चीज बचेगी? इसलिए साहित्यकर्मियों को और सचेत होते हुए पूरे धैर्य से समाज की विभेदकामी शक्तियों के विरुद्ध पूरी

Scanned with CamScanner

ईमानदारी के साथ खड़ा होना होगा। यदि इसके लिए नियम-कानून बनाने की जरूरत पड़ती है, तो उस दिशा में भी आगे बढ़ना होगा; तभी जाकर समाज की रक्षा की जा सकती तथा उसे उन्नत बनाने की दिशा में अग्रसर हुआ जा सकता है।

बाजारवाद दिन-ब-दिन जटिलता पैदा कर रहा है। समाज, संस्कृति और साहित्य के हर उपादान को कलुषित कर रहा है। इसके विरुद्ध हिन्दी आलोचना की धार को और धारदार बनाने की कोशिश करनी होगी, क्योंकि प्रज्ञा से बढ़कर दुनिया में और कुछ नहीं है इसी बल पर मानव सभ्यता ने बड़ी-बड़ी चुनौती का सामना करने में नजीर पेश की है। इसी नजीर को हिन्दी आलोचना की रोशनी में आगे बढ़ाते हुए उसे और उज्ज्वल से उज्ज्वलतम करने की चेष्टा करनी होगी, जो आज की मांग है। यही मांग समय की मांग है, जिसने एक बेहतर जिन्दगी के लिए एक बेहतर मनुष्य गढ़ने का व्रत लिया है।

प्रेमचंद ने हिन्दी-कथा साहित्य को वास्तविक धरातल प्रदान किया। कथा-साहित्य में जिन्दगी की सक्रियता देखने को मिलती है, उस सक्रियता को प्रेमचंद ने जमीन से जोड़ने का कार्य किया। जब तक जिन्दगी को जमीन से नहीं जोड़ा जाता, तब तक वास्तविक समस्याओं के स्रोत का भी पता नहीं चलता। वास्तविक समस्याओं का मुकाबला करने की क्षमता हर रचनाकार में नहीं होती। जिन्दगी की संगतियों-विसंगतियों को समझना तथा उस समझ के आधार पर एक ठोस मार्ग को प्रशस्त करना अपने-आप में महती सोपान है, इस सोपान को तैयार करने में प्रेमचंद की लेखनी ने जो भूमिका अदा की, वह भूमिका युग-युग तक कथा-साहित्य को ताजगी देती रहेगी।

इस ताजगी की तलाश 'प्रेमचंद और किसान-विमर्श' नामक इस शोध का निष्कर्ष है। आखिर इसकी क्या जरूरत है? इस ताजगी को लेकर क्या किया जायेगा? इस शोध में शुरू से लेकर अंत तक इस बात पर काफी जोर दिया गया है कि प्रेमचंद की रचनाशीलता ने किसान-जीवन को ही अपना केंद्र-बिन्दु क्यों बनाया? इसी पर विचार-विमर्श किया गया है।

२१वीं सदी का एक दशक गुजर गया। पर किसानों की आर्थिक स्थिति का ग्राफ अभी भी ऊपर नहीं उठ पाया। कृषि क्षेत्र में भयानक संकट आया। इस संकट का जनक कौन है? उस जनक ने अपने किस हित को साधने की कोशिश की? उस कोशिश को अमली जामा पहनाने के सिलसिले में किसानों पर किस तरह टूट पड़ा, इसके पीछे क्या कारण है इत्यादि सवालों पर विचार करना आज आवश्यक हो गया है क्योंकि सूचना क्रांति का बोलबाला धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा है सरेआम कहा जाता है कि सूचनाओं को जमा करने और उनको सही इस्तेमाल करने की प्रक्रिया जीवन को स्वर्ग बनायेगी। इस कथन के पक्ष में हजारों तर्कों और मतों को उपस्थित किया जाता है। बड़े पैमाने पर इसके सुफल सामने आते होंगे, लेकिन दुष्परिणामों पर नजर जाते ही किसानों की याद आती है। खासकर तीसरी दुनिया के देशों पर ध्यान जाता है, तो यही कहना पड़ता है कि यदि किसानों की आर्थिक स्थिति सुधरती है, तो इस संसार में न केवल भुखभरी से मरने वालों की संख्या कम होगी, बल्कि वृहत्तर पैमाने पर आम आदमी को शिक्षा-स्वास्थ्य से सीधे तौर पर जोड़ना संभव होगा। आम आदमी के जीवन में खुशहाली आयेगी।

इस तरह की खुशहाली का बीज संघर्ष में छिपा होता है। मानव सभ्यता ने आज तक संघर्ष को

Scanned with CamScanner

अस्वीकार नहीं किया और उसकी अग्रगति पर ध्यान देने से यह पता चलता है कि आनेवाले समय में भी जनसंघर्ष के महत्व को खारिज नहीं किया जा सकता। प्रेमचंद का कथा-साहित्य यही साबित करता है कि किसान संघर्ष की जमीन तैयार करता है। चाहे जितना बड़ा आंदोलन हो उसकी सफलता किसानों के कंधों पर आश्रित होती है। यही कारण है कि उन्होंने किसानों की तड़प को वाणी दी। इस तड़प को आवाज देने में उन्होंने पूरी सफलता और सार्थकता हासिल की। उन्होंने किसानों के सांस्कृतिक संघर्ष को गति देने का जो संकल्प जीवन के आरंभ में लिया उसे जीवन के अंतिम क्षणों तक पूरा किया।

इस संकल्प को हकीकत का जामा पहनाने के उद्देश्य से उन्होंने अपने कथा-साहित्य में किसान-संस्कृति को अधिष्ठित किया। इस अधिष्ठान को स्थापित करने की प्रक्रिया के तहत उन्होंने ग्रामीण-जीवन, युगीन-यथार्थ और किसान-चरित्रों की एक बेहतरीन नजीर पेश की, जिसकी यात्रा परतंत्र भारत में शुरू होती है। आजाद भारत के किसानों सहित मेहनतकशों को उससे आलोक मिलता है। यही कारण है कि भारत के लाखों-लाख होरी-हल्कू खेती के कार्यों में जुटे हुए हैं। प्रेमचंद के कथा-साहित्य के अध्ययन से यह साबित होता है कि यदि शासन-व्यवस्था के विरुद्ध किसानों को लामबंद किया जाय, तो समाज को चलाने की नीतियों में बदलाव लाना संभव हो सकता। उन्होंने अपनी रचनाओं में इस बदलाव को सुरक्षित करने के लिए जीवन-मूल्यों को अर्जित करने पर बल दिया है। प्रेमचंद का दर्द यह भी है कि जिस मध्यवर्ग का काफी तेजी से विकास हो रहा है, उस वर्ग को निजी स्वार्थ के अलावा और कुछ नहीं दिखता। यदि यही स्थिति रही, तो मानव-मुक्ति असंभव है; क्योंकि मुक्ति समाज में किसी एक व्यक्ति के लिए नहीं आती। इसी संदर्भ में उन्होंने यह भी स्थापित किया कि युग की सच्चाइयों को समझे बिना समाज में बढ़ती विषमता को खत्म नहीं किया जा सकता। उनकी रचनाएं किसान-संस्कृति और किसान-संघर्ष का पूर्ण दस्तावेज है।

इस दस्तावेज की गहराई में प्रवेश करने से यह भी पता चलता है कि भारतीय गांवों ने जब ब्रिटिश उपनिवेश के खिलाफ मुंह खोलने का काम आरंभ कर दिया, तब उस उपनिवेश को भारत छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा। प्रेमचंद के किसानों पर विमर्श करने से यह पता चलता कि अगर किसान एकजुट हो गया, और उसकी जागरुकता बढ़ गयी, तब ब्रिटिश उपनिवेशवाद जैसे ताकतवर को भी झुकने के लिए बाध्य होना पड़ा था; तब भला उसकी क्या सामर्थ्य है, जो उसके पिछलग्गू बने हुए हैं। उन्हीं किसान-विरोधियों के चलते किसानों की आर्थिक स्थिति आज बेहतर नहीं हो पाती। परतंत्र भारत में किसानों को खेती करना पड़ता, और उन्हें फसल अपने मालिकों-जमींदारों के घर पहुँचाने के लिए मजबूर होना पड़ता था और आज आजादी के ६२ साल गुजरने के बावजूद किसानों को अपनी फसलों की उचित कीमतें नहीं मिलती यहां तक कि उन्हें खुदकुशी करने के लिए बाध्य होना पड़ता। उन्हें बचाने की चुनौती समाज के सामने उत्पन्न हो गयी।

प्रेमचंद का हल्कू अच्छी तरह समझता है कि घर फसल ले जाना अच्छा नहीं है। इससे अच्छा है कि गाय फसल चर जाय। इस प्रतीक के जरिये प्रेमचंद ने देशी जमींदारों और विदेशी उपनिवेश को एक खुली चुनौती दी, तभी तो अपनी पत्नी मुन्नी को सुबह-सुबह देखकर हल्कू मुस्कान भरता है, जब उसके हवाले से पता चलता कि नील गायें खेत चर गयीं। किसानों की ताकत को समझे

Scanned with CamScanner

बिना कोई रचनाकार इस तरह का प्रतीक नहीं दे पाता, क्योंकि रचनाकर के व्यक्तित्व से ही रचनाएं जन्म लेती हैं। यही वह कारण है, जिसके चलते कोई रचनाकार अपने युग में एक विकल्प को स्थापित कर पाता है।

प्रेमचंद ने अपने युग में एक विकल्प को स्थापित किया। इस विकल्प ने भारतीय ग्रामीण शक्तियों को मुख्यधारा से जोड़ा। प्रेमचंद के पात्रों की बुद्धिमत्ता बार-बार उजागर हुई। सतही तौर पर देखने से कोई कह सकता कि प्रेमचंद ने आलसी और कामचोर पात्रों का सृजन किया, लेकिन उन पात्रों से गहरा सम्पर्क स्थापित करने से पता चलता कि उनके आलसपन या उनकी कामचोरी में एक तरह का प्रतिवाद छिपा हुआ है। पूरी सावधानी के साथ उन ताकतों के विरुद्ध प्रबल आग छिपी हुई, जिन ताकतों ने हर चीज पर अपना कब्जा जमा लिया। उनके किसान-पात्रों को देखने से यह पता चलता कि वे नीति-नैतिकताओं के हथियारों से अपने शत्रुओं के विरुद्ध लड़ते हैं। उस लड़ाई में किसान धैर्य नहीं खोता और न बेचैन होता। उसकी धीरता का विश्लेषण जरूरी हो जाता कि आखिर विषम परिस्थितियों में भी वह अडिग क्यों है? इसलिए कि वह सही वक्त पर सही हस्तक्षेप करता है।

जो व्यक्ति समय की गति को समझता है, जो उसकी मांग को पूरा करने के लिए आगे बढ़ता है, उसकी विजय-यात्रा को कोई नहीं रोक सकता। प्रेमचंद का कथा-साहित्य इस बात का प्रमाण है कि किसान अजेय है, क्योंकि घोर विपरीत परिस्थितियों का मुकाबला करता है तथा आगे बढ़ने का रास्ता निकाल लेता है। इसी रास्ते को और प्रशस्त करने की आवश्यकता है।

इस किसान-विमर्श के जरिये भारतीय किसानों के संघर्ष को समझा जा सकता है, उनकी सांस्कृतिक विशेषताओं को रखांकित किया जा सकता है तथा संघर्ष के मैदान में डटे रहने की प्रेरणा मिल सकती है। पूरा विश्वास है कि इस विमर्श के जरिये जीवन की सच्चाई, गति और बेचैनी स्पष्ट होगी। प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं के जरिये समाज में सच्चाई और बेचैनी पैदा करने की कोशिश की, जो कोशिश तत्कालीन समय में एक विकल्प बनी गयी। आज के दौर में यह विकल्प और प्रशस्त हुआ है। यदि खाद्य संकट से उबरना है, तो किसानों की समस्याओं को सुलझाना होगा। कृषि संकट को बढ़ाकर किसी कीमत पर खाद्य सुरक्षा की गारंटी नहीं दी जा सकती, यह बात प्रेमचंद ने बार-बार दुहरायी है। यही कारण है कि परतंत्र भारत से लेकर स्वतंत्र भारत तक हिन्दी कथा-साहित्य के शीर्ष पर प्रेमचंद का नाम आता है, जो एक सूरज की तरह सबको रोशनी देता है, जिस सूरज का अवसान कभी नहीं होगा, क्योंकि किसान और उसकी संस्कृति प्रेमचंद के कथा-साहित्य की ताकत है। इस शोध का यही निष्कर्ष है, जिसकी खासियत फिलहाल भविष्य के गर्भ में सुरक्षित है।

संदर्भ :

१. प्रेमचंद–कुछ विचार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९९७ पृ. ९०
२. वही पृ. ९२-९३
३. रजा जाफर-प्रेमचंद : कहानी का रहनुमा, लोकभारती इलाहाबाद, २००५ पृ. १३
४. वही पृ. ८१
५. शर्मा डॉ. राम विलास– प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथी आवृत्ति

Scanned with CamScanner

: २००६ पृ. १७

६. रईस कमर- प्रेमचंद की विचार-यात्रा, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ. ११

७. वही पृ. ३२

८. शर्मा चंद्रिका त्रिलोचन- जैन-पूर्वकाली तथा परवर्ती कथा परम्परा (सं.) सिंह मुरली मनोहर प्रसाद, अग्रवाली रेखा त्रिपाठ महता और शर्मा रामविलास अर्थवत्ता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, २००६ पृ. ३००

९. शर्मा डॉ. राम विलास, प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथी आवृत्ति : २००६ पृ. ७७-७८

१०. रहबर हंसराज, प्रेमचंद : जीवन, कला, और कृतित्व, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, दूसरा संस्करण १९६२ पृ. १

११. रईस कमर, प्रेमचंद की विचार-यात्रा प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, पृ. १

१२. रहबर हंसराज, प्रेमचंद : जीवन, कला, और कृतित्व, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, दूसरा संस्करण १९६२ पृ. ४

१३. रईस कमर, प्रेमचंद की विचार-यात्रा प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, पृ. १८-१९

१४. रहबर हंसराज, प्रेमचंद : जीवन, कला, और कृतित्व, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, दूसरा संस्करण १९६२ पृ. १५७

१५. रहबर हंसराज, प्रेमचंद : जीवन, कला, और कृतित्व, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, दूसरा संस्करण १९६२ पृ. १६३

१६. शर्मा डॉ. राम विलास, प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथी आवृत्ति : २००६ पृ. २७

१७. प्रेमचंद-कुछ विचार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७७ पृ. २५

१८. वही पृ. २६

१९. वही पृ. ३२

२०. वही पृ. ४३

२१. वही पृ. ४५

२२. वही पृ. ५३

२३. वही पृ. ६७

२४. शर्मा राम विलास, प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला आवृत्ति संस्करण, १९९३. पृ.-८१

२५. वाजपेयी नन्ददुलारे, (सं) सिंह मुरली मनोहर प्रसाद, सिंह रेखा, प्रेमचंद विमल महता और शर्मा अर्थवत्ता, हिन्दी उपन्यास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, २००६, पृ.-१९४

२६. शर्मा राम विलास, प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला आवृत्ति संस्करण,

Scanned with CamScanner

१९९३, पृ.-९५
२७. शर्मा नलिन विलोचन, वाजपेयी नन्ददुलारे, (सं) सिंह मुरली मनोहर प्रसाद, सिंह रेखा, प्रेमचंद विगत महत्ता और वर्तमान अर्थवत्ता, हिन्दी उपन्यास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, २००६, पृ.-२०९
२८. शर्मा राम विलास, प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला छात्र संस्करण, १९९३, पृ.-४५
२९. शर्मा राम विलास, प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला छात्र संस्करण, १९९३, पृ.-९८
३०. शर्मा राम विलास, प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला छात्र संस्करण, १९९३, पृ.-१०८
३१. चौधरी राम आह्लाद, महंगाई की मार, राहुल सांकृत्यायन अकादमी, रानीगंज, प्रथम संस्करण, २००९, पृ.-३९
३२. जैन नेमिचन्द (सं), मुक्तिबोध रचनावली-पांच राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण १९८०, पृ.-२६
३३. विश्वनाथन एस, राम एन, द हिन्दू, पैढ न्यूज : इट्रोस्पेक्टशन टाइम फार द मीडिया, चेन्नई, २०१०, पृ.-११

Scanned with CamScanner